1857 की क्रांति और अवध संदर्भ : 'गदर के फूल'

(एम.फिल. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक

डॉ. ओमप्रकाश सिंह

शोधार्थी

स्नेह सुधा

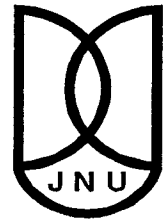

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली—110067

2009

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated : 18.05.09

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle "**1857 KI KRANTI AUR AVADH, SANDARBH : 'GADAR KE PHOOL'**" by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

["REVOLUTION OF 1857 AND AVADH : IN CONTEXT OF 'GADAR KE PHOOL'"]

Sneh Sudha

SNEH SUDHA
(Research Scholar)

Dr. OMPRAKASH SINGH
(Supervisor)
(CIL/SLL&CS/JNU)

PROF. CHAMAN LAL
(Chairperson)
(CIL/SLL&CS/JNU)

23/05/09

समर्पण

दादाजी को....

जिन्हें मेरा लिखना

और छपना

बहुत प्रिय था।

विषय–सूची

भूमिका		i-iv
पहला अध्याय	**अमृतलाल नागर और उनका रचना-संसार**	1-36
	(i) अमृतलाल नागर : संक्षिप्त जीवन-परिचय	
	(ii) अमृतलाल नागर : साहित्यकार व्यक्तित्व की निर्मिति	
	(iii) अमृतलाल नागर का रचना-संसार	
दूसरा अध्याय	**'गदर के फूल' का कथ्य**	37-83
	(i) 1857 की क्रांति में अवध	
	(ii) अवध के प्रमुख क्षेत्र और गदर में उनकी भूमिका	
	(iii) क्रांतिकारियों का स्वार्थ और राष्ट्रीय लक्ष्य	
	(iv) देशभक्ति और राजभक्ति	
तीसरा अध्याय	**इतिहास के आईने में 'गदर के फूल'**	84-129
	(i) 'गदर के फूल' में इतिहास का प्रयोग	
	(ii) ऐतिहासिक साक्ष्यों और घटनाओं का विश्लेषण	
	(iii) कथ्य के प्रस्तुतीकरण में इतिहास सहायक या बाधक	
उपसंहार		130-135
संदर्भ-ग्रंथ सूची		136-138

भूमिका

'गदर के फूल' 1857 की क्रांति में अवध की भूमिका को केन्द्र में रखकर नागर द्वारा लिखी गई कृति है। इस पुस्तक को अपने शोध का विषय बनाने की बात कहूँ तो निश्चित रूप से उसमें मेरी रुचि की बहुत बड़ी भूमिका है। एम.फिल. में मैं किसी ऐतिहासिक विषय पर काम करना चाहती थी। मैंने अपने निर्देशक से अपनी रुचि के बारे में बतलाया। उन्होंने मुझे अमृतलाल नागर की रचना 'गदर के फूल' पढ़ने के लिए दी। पहली बार रचना कुछ अलग-सी लगी, सच कहूँ तो बहुत रुचिकर नहीं लगी। हाँ, कहीं न कहीं मैं प्रभावित अवश्य हुई। फिर दो-तीन बार पढ़ने के बाद मैंने इसी पुस्तक को अपने शोध का केन्द्र बनाने का निश्चय कर लिया। फिर 1857 की क्रांति को पढ़ते हुए वह निश्चय और दृढ़ होता चला गया।

1857 की क्रांति की वर्ष 2007 में 150वीं वर्ष गाँठ मनाई गई थी। उसका प्रभाव समाप्त नहीं हुआ था। उस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। कई पत्रिकाओं के विशेषांक और कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनमें 1857 की क्रांति के विविध पक्षों को प्रकाश में लाया गया है। उन्हें पढ़ने के बाद मैंने उसे अपने लघु शोध-प्रबंध का विषय बनाने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार मेरा विषय बना–'1857 की क्रांति और अवध, सन्दर्भ : 'गदर के फूल'। उसके बाद मैंने 'गदर के फूल' को केन्द्र में रखकर 1857 की क्रांति को देखने का प्रयास किया। इस पुस्तक को पढ़ते हुए सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि 1857 की क्रांति के संबंध में मेरी कुछ शंकाओं का समाधान हो गया। नागर ने जिस खूबसूरती से उचित तर्कों के आधार पर भारतीय नायकों को देश की स्वतंत्रता के लिए जूझते दिखलाया उससे मुझे क्रांति के सकारात्मक पक्षों पर दृढ़ विश्वास होता चला गया। अमृतलाल नागर ने लिखा है कि कमज़ोरियाँ सबमें होती हैं। लेकिन केवल उसी पक्ष को देखते हुए खूबियों से मुँह मोड़ लेना उचित नहीं है। यह कितनी अच्छी बात है जिस पर हम कम ही ध्यान दे पाते हैं। नागर ने 1857 की क्रांति और उसके नायकों, दोनों के सकारात्मक पक्षों को ढूँढ निकालने का दायित्व उठाया और उसे पूरी तरह निभाया।

इस लघुशोध प्रबंध को मैंने तीन अध्यायों में बाँटा है। पहले अध्याय में मैंने अमृतलाल नागर और उनके रचना-संसार पर बात की है। इस अध्याय के तीन उप-अध्याय हैं। पहले में मैंने अमृतलाल नागर का संक्षिप्त जीवन-परिचय दिया है। दूसरे में मैंने उनके साहित्यकार व्यक्तित्व की निर्मिति पर विचार किया है। तीसरे में मैंने उनके रचना-संसार का संक्षिप्त परिचय दिया है।

दूसरे अध्याय में मैंने 'गदर के फूल' के कथ्य पर बात की है। उसे मैंने चार उप-अध्यायों में बाँटा है। 1857 की क्रांति में अवध किस रूप में उपस्थित है, पहला उप-अध्याय उस पर केन्द्रित है। दूसरे में अवध के प्रमुख क्षेत्र और गदर में उनकी भूमिका पर नागर के विचारों के बारे में मैंने बात की है। तीसरे उप-अध्याय को मैंने क्रांतिकारियों के स्वार्थ और राष्ट्रीय लक्ष्य तथा चौथे को उनकी भावना में देशभक्ति या राजभक्ति की खोज पर केन्द्रित किया है।

तीसरे अध्याय में मैंने इतिहास के आईने में 'गदर के फूल' को देखा है। उसमें तीन उप-अध्याय हैं। पहले में मैंने 'गदर के फूल' में इतिहास के प्रयोग पर बात की है। दूसरे में मैंने नागर द्वारा किए गये ऐतिहासिक साक्ष्यों और घटनाओं के विश्लेषण पर बात की है। तीसरे में मैंने विचार किया है कि इतिहास का प्रयोग 'गदर के फूल' के कथ्य को प्रस्तुत करने में सहायक रहा है या बाधक?

'गदर के फूल' को पढ़ते हुए 1857 की क्रांति के सकारात्मक पहलुओं से प्रभावित हुई। नागर ने ठीक ही लिखा है कि यह कहीं से उचित नहीं है कि हम दोषों को बढ़ा-चढ़ा कर देखें और गुणों पर ध्यान न दें। 1857 की क्रांति में वाकई कई प्रेरणादायी तत्त्व मौजूद है जिसने आगे के स्वतंत्रता-आन्दोलनों की बुनियाद रखी है। जैसा कि मजूमदार ने भी लिखा है कि 1857 की क्रांति एक निरंतरता में आयी थी। यह कहना गलत न होगा कि यह निरंतरता आगे भी बनी रही है जिसके कारण देश स्वतंत्र हुआ। यहाँ यह प्रश्न अवश्य उठता है कि जब हमारे स्वतंत्रता आन्दोलनों ने 1857 की क्रांति से प्रेरणा ली है तो फिर नागर ने या फिर अन्य भारतीय दृष्टिकोण वाले इतिहासकारों ने 'विस्मृत प्रेरणा' की तरह उस पर बात क्यों की है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि निश्चित रूप से अप्रत्यक्षतः 1857 की क्रांति ने हमारे स्वतंत्रता आन्दोलनों की आधारशिला रखी है, किन्तु इस प्रभाव के प्रति कोई स्वीकारोक्ति नहीं है। अधिकांशतः ब्रिटिश दृष्टिकोण अपनाये जाने के कारण

1857 की क्रांति के साथ न्याय नहीं किया जा सका है। क्रांति से प्रेरणा लेते हुए भी उसके प्रेरक तत्त्वों को किसी ने स्वीकार नहीं किया। इसीलिए 1857 की क्रांति के सबल पक्षों और प्रेरणादायी तत्वों को ढूँढ़ने का काम न केवल सराहनीय वरन् उल्लेखनीय है।

1857 की क्रांति को सबसे पहले मार्क्स ने 'राष्ट्रीय विद्रोह' के रूप में देखा था। उनका लेख 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' में छपा था। भारत में सावरकर ने सर्वप्रथम 1857 को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मानते हुए अपनी पुस्तक का नाम '1857 का स्वातंत्र्य समर' रखा। वह पुस्तक 1907 में प्रकाशित हुई। मूल पुस्तक मराठी में लिखी गयी थी। फिर उसका अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद हुआ।

'गदर के फूल' पर Subaltern Studies (सबअल्टर्न स्टडीज) के रूप में विचार करें तो पता चलता है कि नागर ने 1857 की क्रांति को विस्तृत फलक पर देखा है। नागर ने अवध में 1857 की क्रांति के संबंध में शंकरपुर जिला रायबरेली के राणा बेनीमाधव बख्श, गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह और चहलारी के ठाकुर बलभद्रसिंह जैसे स्थानीय नेताओं को बहुत महत्त्व दिया है। नागर का मानना है कि उन तीनों ने अंग्रेजों से कभी हार नहीं मानी और पूरी वीरता से ब्रिटिश सत्ता का विरोध किये। नागर ने उन तीनों वीरों के अलावा दरियाबाद के राय अभिराम बली, सिकरौरा के जमींदार अजब सिंह और उनके साथी अल्लाह बख्श, हड़हा के राजा, रानी रतन कुंवर, बरकटहा के ठाकुर, रानीमऊ के ताल्लुकेदार, कमियार के शेर बहादुर, बाबा रामचरण दास, अमीर अली, अच्छन खाँ, शम्भू प्रसाद शुक्ल, बौंडी के महाराज हरदत्तसिंह, चर्दा नरेश राजा जगजोत सिंह, राजा नरपति सिंह, राव रामबख्श (डौंडिया खेड़ा), राजा रज़्ज़ाक बख्श आदि के चरित्र से प्रेरणादायी तत्त्वों को खोज निकाला है। 1857 के सही नायकों की पहचान के क्रम में नागर ने हाशिये पर के लोगों को भी मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया है।

मैं अपना शोधकार्य पूरा कर पायी, इसके लिये सर्वप्रथम् दादाजी को धन्यवाद देती हूँ। मेरे दादाजी जो इस संसार में न होते हुए भी हमेशा मेरे साथ रहे और मेरा हौसला बढ़ाते रहे। उनकी इच्छा थी कि मैं साहित्य के क्षेत्र में आगे बढ़ूँ। मैं जानती हूँ कि साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, मेरा यह लघु-शोध प्रबंध छोटा-सा ही सही पर उसी क्षेत्र का प्रयास है। वे हमेशा पापा से कहा करते थे कि हम भाई-

बहनों की पढ़ाई कभी बाधित न हो। इसीलिए मैं बिहार के पूर्णियाँ जिले से जे.एन.यू. तक का सफर तय कर पायी। इसमें मैं दादाजी के आशीर्वाद और मनोकामना का बहुत बड़ा हाथ मानती हूँ।

लघु शोध-प्रबंध लिखने के क्रम में मैंने अपनी लेखनशैली में निरंतर सुधार का अनुभव किया। उसका पूरा श्रेय मेरे गुरूवर को जाता है। उन्होंने बहुत धैर्य के साथ मेरी हास्यास्पद त्रृटियों को सुधारा। उनमें कुछ त्रुटियाँ तो ऐसी थीं जिसे मैं अपनी शैली की कुशलता मानती थी। अपने पहले अध्याय के हर एक 'ड्राफ्ट' के बाद गुरूवर मुझसे कहते, 'एक बार और लिखना पड़ेगा।' मैं स्वीकृति में सिर हिलाती। मैं उनसे हर बार बस यह सांत्वना चाहती थी कि मेरा दूसरा प्रयास पहले से बेहतर हो। मुझे उस सांत्वना के साथ एक अतिरिक्त सम्बल के रूप में हमेशा यह सुनने को मिलता–'दूसरे अध्याय में तुम्हें उससे कम मेहनत करनी पड़ेगी।' इसीलिए मैं अपना लेखन जितना भी सुधार पायी हूँ, उसके लिए मैं अपने गुरूवर की आभारी हूँ।

मेरे काम को पूरा करने में मम्मी-पापा और दीदी का आशीर्वाद सदा बना रहा। छोटी बहन स्वीटु और भाई आशी का मुझे निरंतर उत्साहित करना, मेरे काम की निरंतरता को बनाए रखने में सहायक रहा। दोस्त सन्तोष ने जे.एन.यू. से बहुत दूर वर्धा में रहते हुए भी जिस प्रकार मुझे अच्छा और निरंतर लिखते रहने के लिए प्रेरित किया उससे मुझे सदा ऊर्जा मिलती रही। इसीलिए मैं उन सबको धन्यवाद देती हूँ। साथ ही मैं उन लोगों को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने मेरे आस-पास का माहौल सुखद बनाए रखा।

पहला अध्याय

अमृतलाल नागर और उनका रचना-संसार

(i) अमृतलाल नागर : संक्षिप्त जीवन-परिचय

(ii) अमृतलाल नागर : साहित्यकार व्यक्तित्व की निर्मिति

(iii) अमृतलाल नागर का रचना-संसार

(i) अमृतलाल नागर : उनका संक्षिप्त जीवन-परिचय

अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त 1916 ई. को गोकुलपुरा, आगरा में हुआ था। आगरा में उनका ननिहाल है। उनका पैतृक घर लखनऊ में है। उनके पिता का नाम पं. राजाराम नागर था, जो पिता शिवराम नागर के एकमात्र जीवित पुत्र थे। राजाराम नागर की इच्छा कलकत्ता जाकर डॉक्टरी पढ़ने की थी। पिता का मोह उनकी इस इच्छा की पूर्ति में बाधक बना। बाध्य होकर राजाराम नागर ने लखनऊ में ही पोस्टमास्टर जनरल के ऑफिस में सामान्य-सी नौकरी कर ली। डॉक्टरी पढ़ने की दमित इच्छा से उनके अंदर कुंठा का निर्माण हुआ। उसकी परिणति आत्महत्या में हुई। राजाराम नागर में बौद्धिक प्रतिभा की कमी नहीं थी किन्तु 'जड़ कुँठा' के कारण वह फलीभूत नहीं हो पायी। इसीलिए अमृतलाल नागर पिता को 'विलक्षण प्रतिभा का अभागा धनी' मानते थे।

अमृतलाल नागर मुख्यतः गद्यशिल्पी हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध, हास्य-व्यंग्य, नाट्य-साहित्य और बाल-साहित्य लिखा है। उनका रचना-कर्म अनुभव और शोध की ठोस-भूमि पर खड़ा है। वे बचपन से ही लोगों के वार्तालाप के तौर-तरीके और हाव-भाव का निरीक्षण करने में आनंदित होते थे। घर के नीचे सब्जी वालों की नोंक-झोंक और गालियों में प्रस्तुत शब्दावलियों को वे याद कर जाते थे। नागर के पिता को जब इसका पता चला तो उन्होंने खूब डाँटा। नागर को विषयतर पढ़ाई में अधिक रुचि थी। यह क्रम आगे भी चलता रहा। कोर्स की पढ़ाई में उन्होंने अधिक रुचि नहीं दिखलायी। इस तरह उनकी ज्ञान-संपदा में तो वृद्धि होती चली गयी किंतु व्यवस्थित पढ़ाई बाधित रही। 1934 ई. में इंटरमीडियट की पढ़ाई के लिए उनका दाखिला क्रिश्चियन स्कूल में हुआ। 1935 ई. में पिता के देहाँत के बाद नागर को पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। इस प्रकार डिग्री की पढ़ाई से इनका पीछा छूट गया।

नागर के आरंभिक जीवन में उनके पिता और पंडित जी (ट्यूशन मास्टर) का महत्वपूर्ण स्थान रहा। दोनों से नागर को जीवन की दिशा मिली। किसी गलती के लिए पिता से मार खा लेने के बाद वे उसे दुहराने के बारे में सोच भी नहीं सकते थे। पंडित जी अपने विद्यार्थियों का जीवन सँवारने के लिए तन-मन से जुटे रहते थे। विद्यार्थियों के लिए उन्होंने परीक्षा के समय 4 बजे सुबह उठने का नियम बना

दिया था। इसके लिए वे कड़ाके की ठंड में 4 बजे सुबह उठकर सबके घर आवाज लगाते थे। अपने मास्टरजी का नागर ने बहुत उपकार माना है।

नागर बचपन से ही केवल पढ़ाई या घुमक्कड़ी में समय बिताते थे। घुमक्कड़ी के व्यसन से उन्हें कई लाभ हुए। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण लाभ था– लोगों के व्यक्तित्व का अध्ययन। यही अध्ययन नागर की रचनाओं की पृष्ठभूमि तैयार करता था।

नागर को 'विजया सेवन' (भाँग) बहुत प्रिय था। उसके सेवन से उनके साहित्यिक विचारों का प्रवाह तीव्र ही होता था। नागर भाँग की मात्रा का हमेशा ध्यान रखते थे, जिससे कि वे होश में रहें। अपनी आत्मकथा 'टुकड़े -टुकड़े दास्तान' में भी उन्होंने विजया-सेवन का सरस वर्णन किया है। बचपन से ही वे साहित्यकारों से मिलते रहते थे। वाराणसी जाना तो उनका नियम था। 16-17 वर्ष की उम्र में कलकत्ता ज़ाकर उन्होंने शरतचन्द्र चटर्जी से मुलाकात की। उन्होंने अपने घर के निकट ही रहने वाले कवि रूपनारायण पाण्डेय से भी मुलाकात की। इन साहित्यकारों के मार्गदर्शन ओर प्रोत्साहन से नागर के लेखन को दिशा मिली।

अमृतलाल नागर की पत्नी का नाम प्रतिभा नागर था। दोनों की पहली मुलाकात बड़ी दिलचस्प है। सन् 1922 या 1923 में मौसी के विवाह में नागर आगरा गये थे। घर की रंगाई-पुताई हुई थी। बिरादरी की औरतें विवाह पूर्व की रस्म के लिए जमा हुई थीं। तभी नागर ने देखा कि तीन चार वर्ष की गुड़िया जैसी गोरी सुंदर लड़की अकेले में रो रही है। बहुत पूछने पर उसने अपना हाथ आगे कर दिया। किवाड़ों पर लगे कोलतार की रगड़ से उसकी हथेली में काला दाग लग गया था। नागर कहीं से साबुन लाकर उस गुड़िया की हथेली से कालिख छुड़ाने लगे। दोनों की आयु में केवल एक वर्ष आठ महीने का अंतर था, "रो मत, अभी साफ हो जाएगा।"[1] एक छोटा-सा लड़का बड़े प्यार से छोटी-सी लड़की को समझा रहा था। किसी स्त्री ने इस दृश्य को देखा और दूसरों को बुला लायी। उस गुड़िया की दादी ऐसी रीझीं कि दोनों की सगाई हो गयी। इस सगाई से अन्य रिश्तेदार खुश नहीं थे। वे इस संबंध को तोड़ने के लिए षड्यंत्र रचने लगे। दोनों के घर एक-दूसरे की बुराई की ख़बरें पहुँचने लगी। ऐसे में प्रतिभा नागर ने अपने इच्छित वर की प्राप्ति के लिए शिव का व्रत रखना प्रारम्भ किया। 31 जनवरी 1931 ई. को

दोनों का विवाह संपन्न हुआ। प्रतिभा नागर के बचपन का नाम बिट्टो था। विवाह के बाद बिटटो प्रतिभा नागर बन गयी। इस विवाह को प्रतिभा नागर भोलेशंकर को चढ़ाये अपने 108 चावलों की ही जीत मानती थीं। इसीलिए इसकी धौंस जमाते हुए वे अक्सर कहतीं–"मैंने तुम्हें पाया है जो मैं कहूंगी, वही तुम करोगे।"[2]

दोनों पति-पत्नी के बीच कलह का सबसे बड़ा कारण प्रतिभा नागर का शकी स्वभाव था। पड़ोसिनों ने उन्हें यह विश्वास दिला दिया था कि मर्द किसी एक स्त्री से बँध कर नहीं रह सकता है। मर्द की बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। रिश्ते में विश्वास की इसी कमी के कारण नागर न चाहते हुए भी एक बार 'फिसल' गए। यह अलग बात है कि पत्नी से भावनात्मक प्रगाढ़ता के कारण उन्हें सँभलते देर न लगी।

अमृतलाल नागर और प्रतिभा नागर के बीच तकरार होती रहती थी। भाई मदन और रतन से उन्हें अतिशय लगाव था। उन्हें बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होता था कि कोई भी उनके भाईयों से बैर रखे। एक बार उन्होंने पिता के समक्ष धमकी दी थी कि अगर यह (प्रतिभा) मेरे रतन-मदन से बैर करेगी तो हम अपनी जान दे देंगे। संयोग से एक-डेढ़ महीने बाद ऐसे ही प्लॉट वाली नागर की कहानी 'माधुरी' में छपी। यह कहानी पिता ने पढ़ी। उन्होंने अपने मित्र से इस विषय में चर्चा की। 'एक तो करेला ऊपर से नीम चढ़ा', की तर्ज़ पर उनका मन भयभीत हो उठा। उनकी भगद्भक्ति बढ़ गयी। नागर का मानना है कि इस चिंता ने भी पिता की आत्महत्या की योजना को बल दिया। इस सदमें में नागर की माता पागल हो गयीं।

नागर ने अपनी आत्मकथा 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' में भी प्रतिभा नागर से होने वाले कलह की चर्चा की है। दोनों ही उग्र स्वभाव के थे। इसीलिए अंततः उन्होंने आपसी समझौता किया था कि जब एक गुस्सा करेगा तो दूसरा शांत रहेगा। बाद में दोनों में प्रगाढ़ मित्रता हो गयी। पत्नी के सहयोगात्मक रवैये के बारे में नागर ने लिखा है–"मेरे पागलपन के लिए इसने बहुत कष्ट झेला है। यह न होती तो मैं क्या लिख पाता?"[3]

प्रतिभा नागर ने नागर के रचनाकार व्यक्तित्व को बनाने में निरंतर सहयोग दिया। बम्बई में फिल्मोद्योग से जुड़े होने के समय आदमनी अच्छी होती थी लेकिन नागर का मन नहीं लगता था। तब पत्नी ने उन्हें लखनऊ वापस चलने की सलाह

दी। उन्होंने नागर को विश्वास दिलाया कि कम पैसे में ही गुज़र-बसर हो जाएगा। प्रतिभा नागर ने अपना एक व्यक्तित्व निर्मित किया था। उन्होंने खाली समय में कभी स्कूल का संचालन किया तो कभी स्त्रियों को सिलाई का काम सिखाया। उन्होंने चंदा इकट्ठा कर गरीब लड़कियों का कन्यादान भी किया। ऐसी संगिनी की मृत्यु पर नागर को कवि नरेन्द्र की पंक्ति याद आती है–"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?"[4]

नागर का जीवन स्नेह और सौहार्द्र से भरा था। उन्हें भाईयों से बहत लगाव था। रतनलाल एक अच्छे चित्रकार थे। नागर जब फिल्मोद्योग से जुड़े तब रतनलाल को बंबई फिल्मजगत में कैमरामैन का काम दिला दिया। सबसे छोटे भाई मदनलाल लखनऊ के राजकीय कला एवं शिल्प विद्यालय के छात्र थे। वे जुलाई, 1956 ई. में वहीं प्राध्यापक हो गए। वे उक्त संस्था से, जो बाद में लखनऊ विश्वविद्यालय का अंग बन चुकी थी–प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए। नागर के पुत्र कुमुद नागर एक अच्छे नाट्यकर्मी और रेडियो–दूरदर्शन के प्रस्तोता बने। उन्होंने वह बहुत ख्याति अर्जित की। वे 1993 ई. में दूरदर्शन लखनऊ के सहायक निर्देशक पद से सेवानिवृत्त हुए।

अमृतलाल नागर को अपने कई प्रियजनों की मौत देखनी पड़ी थी। मृत्यु का पहला अनुभव डेढ़ वर्षीय अनुज त्रिभुवन की 1926 ई. में हुई मौत से हुआ। 1935 ई. में पिता के आत्महत्या की। 1964 ई. में माता, 1966 ई. में भाई रतनलाल, 27 अक्टूबर 1984 ई. को दूसरे छोटे भाई मदनलाल और 28 मई 1985 को जीवनसंगिनी प्रतिभा नागर का देहाँत हो गया। इतने प्रियजनों का बिछोह उन्हें अकेला बनाता चला गया। पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी परिवारिक जिम्मेदारियाँ बढ़ी। इसी दवाब में उन्होंने एक बीमा कंपनी में डिस्पैचर की नौकरी कर ली। वहाँ उनका मन न लगा। उन्होंने 18 दिनों में ही वहाँ से इस्तीफा ले लिया।

अमृतलाल नागर को भौतिक सुख-सुविधाओं की बहुत लालसा नहीं थी। उन्होंने फिल्मोद्योग में संवाद-लेखन करने का निर्णय तब लिया जब जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी समस्या आ गयी थी। अपने बंबई गमन के बारे में नागर ने लिखा है कि पिता की मृत्यु के बाद उन पर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ आ गयी थीं। अनुभवहीनता के कारण पारिवारिक संपत्ति का नुकसान

हुआ। दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ने पर चाँदी का भाव बढ़ा। इस चाँदी के सिलसिले में उन्हें बंबई जाना पड़ा। वहाँ वे गीतकार प्रदीप से मिले। उन्होंने नागर को साग्रह मेहमान बनाया। उनके यहाँ नागर के फिल्म के दबे शौक को उभार मिला। यहाँ उनकी मुलाकात रामनाथ डागा से हुई। वे किशोर साहू के साथ एक फिल्म बना रहे थे। उन्होंने उस फिल्म में नागर को संवाद-लेखन का काम दिया। प्रारंभ में नागर को दो सौ रुपये मासिक वेतन दिया गया। उन्होंने 'बहूरानी', 'संग्राम', 'कुंवारा बाप', 'किसी से न कहना', 'पराया धन', 'उलझण', 'राजा', 'वीर कुणाल', 'सावन', 'कल्पना', आदि लगभग अठारह फिल्मों के संवाद लिखे। सर्वप्रथम नागर ने ही सफलतापूर्वक 'डबिंग' का काम किया। पहले उन्होंने दो रूसी फिल्में हिन्दी में डब की। बाद में सुब्बुलक्ष्मी की फिल्म 'मीरा' की तमिल से हिन्दी में डबिंग की। यहाँ उन्होंने पैसा बहुत कमाया लेकिन उनके साहित्यिक मन को संतुष्टि नहीं मिली। सात वर्षों के बाद वे पुनः लखनऊ आए। वहाँ उन्होंने स्वतंत्र लेखन का काम शुरू किया।

अमृतलाल नागर ने कुछ ही समय बाद महसूस किया कि बंबई में अर्जित धन समाप्त हो रहा है। उनके अंदर यह चेतना भी जागी कि स्वतंत्र लेखन से परिवार का पालन-पोषण संभव नहीं है। उन दिनों तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री बी.वी. केसकर और आकशवाणी के महानिदेशक जगदीशचन्द्र माथुर आई. सी. यस. जो हिन्दी के प्रख्यात नाटककार भी हैं, के प्रयासों से विख्यात साहित्कारों को प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त किया जा रहा था। कवि सुमित्रानंदन पंत वहाँ चीफ़ प्रोड्यूसर हो चुके थे। नागर को भी रेडियो का आमंत्रण आया। वे आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर नियुक्त हुए। 17 दिसंबर, 1953 ई को यह नौकरी शुरू हुई। एक से पाँच बजे तक का समय दफ्तर के लिए तय हुआ। रेडियों में आने वाले नाटकों को स्वीकार या अस्वीकार करना उनका काम था। उनसे यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वे प्रसारित होने वाले नाटकों का प्रोड्क्शन करें या आवश्यकतानुसार स्वयं प्रोग्राम लिखें। दफ्तर का समय नागर के मनोनुकूल था क्योंकि वे सुबह 7 बजे से 11 बजे तक का समय पढ़ने या किसी से बातचीत द्वारा अनुभव इकट्ठा करने में लगा सकते थे।

अक्टूबर 1955 ई. में दिल्ली में रेडियो प्रोड्यूसरों की एक विभागीय बैठक हुई। इसमें यह निर्णय लिया गया कि प्रोड्यूसरों को सुबह 10 बजे कर्यालय पहुँचना

होगा। साथ ही आवश्यकतानुसार उन्हें रात तक काम करना होगा। नागर ने अनुभव किया कि इस तरह उन्हें सुबह से शाम तक बँधे रहना पड़ेगा। इसीलिए वे गये थे दिल्ली बैठक में भाग लेने और 'आयी मौज फ़कीर की दिया झोपड़ा फूँक' की कार्यनीति अपना कर पद से इस्तीफा दे आये। उन दिनों मैथिलीशरण गुप्त राज्य-सभा अध्यक्ष थे। उन्होंने कोशिश की कि नागर इस्तीफा वापस ले लें लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। नागर ने विनम्रतापूर्वक इस्तीफा वापस लेने से इनकार कर दिया। इसके बाद आजीवन उन्होंने कोई वैतनिक काम नहीं किया। उन्होंने केवल लेखन के सहारे सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत किया। यद्यपि उन्हें धनाभाव रहा पर आत्मिक संतुष्टि मिलती रही।

अमृतलाल नागर का स्वभाव पिता राजाराम नागर की तरह था। दोनों ही घर पर गुस्सैल और घर से बाहर विनम्र, विवेकी और मददगार प्रवृत्ति के थे। नागर में क्रोध था और पारिवारिक परिस्थितियों के कारण उनके अंदर कुंठाएँ भी थीं। किन्तु साथ ही बाहरी परिवेश की गतिविधि से संपर्क भी बना रहता था। इसीलिए उनकी रचनाएँ के अंतर्दशाओं के साथ एक विस्तृत फलक को भी समेटती है। जीवन के उतार-चढ़ाव के मध्य उन्होंने अपनी रचनाओं के साहित्य-संसार को समृद्ध किया।

अमृतलाल नागर बड़े साहित्यकार होने के साथ ही लखनऊ के विशिष्ट नागरिक भी थे। सामाजिक सांस्कृतिक कार्यों में उनकी रुचि शुरू से ही थी। वे 1974 ई. में 'भारतीय जन नाट्य संघ' के अध्यक्ष मंडल में रह चुके थे। 1961 ई. 1962 ई. में 'इंडो-सोवियत सांस्कृतिक संघ' की राष्ट्रीय समिति के सदस्य रहे। वे 1966-68 ई. में इसी संघ की उत्तर प्रदेश शाखा के महामंत्री रहे। वे 1973-1976 ई. तक 'उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति' के भी अध्यक्ष रहे। 'उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी' के वे 1974-1979 ई. तक कार्यकारी उपाध्यक्ष रहे। नागर के पास संगीत और नाटक की व्यापक दृष्टि थी। उन्होंने इन कलाओं का जनसाधारण से अंतःसम्बन्ध दिखलाकर इनके विकास पर बल दिया। संस्था को इस कार्य का भरपूर लाभ मिला। इसके अतिरिक्त 'साहित्य अकादमी', नई दिल्ली, 'हिन्दुस्तान अकादमी' प्रयाग; और 'नागरी प्रचारिणी सभा', काशी से भी वे समय-समय पर जुड़े रहे। इसके साथ ही नवयुवकों द्वारा चलाए जाने वाले नाट्यकर्म, संगीत और साहित्य से

संबंधित अनेक स्थानीय संस्थाओं को नागर ने प्रोत्साहन और मार्गदर्शन दिया। इस प्रकार नागर ने साहित्य के साथ ही वैविध्यपूर्ण जीवन जिया।

नागर को 34 साल की उम्र में ही रक्तपात रहने लगा था। 1960 ई. में उन्हें टायफाइड हुआ। उसके बाद रक्तचाप स्थायी हो गया। 1980 ई. में उन्हें मधुमेह हुआ। अंतिम चार वर्षों में वे ऊँचा सुनने लगे थे। इस कारण पढ़वाकर सुनने में कठिनाई होती थी किन्तु उनकी मानसिक शक्ति अंत तक अक्षुण्ण बनी रही। इन शारीरिक बीमारियों ने धीरे-धीरे उन पर असर दिखाया। 23 फरवरी, 1990 ई. को उन्होंने अंतिम साँस ली। हिन्दी साहित्य की उन्होंने जीवन के अंतिम क्षणों तक सेवा की । इसके लिए वे हिन्दी साहित्य जगत में चिरस्मरणीय रहेंगे।

(ii) अमृतलाल नागर : साहित्यकार व्यक्तित्व की निर्मिति

अमृतलाल नागर के साहित्यकार व्यक्तित्व की नींव उनके परिवार में पड़ी। बड़ी-सी हवेली में सभी बड़े अपने काम में व्यस्त रहते। नागर के मंझले अनुज रतनलाल उनसे पाँच साल छोटे थे। इसीलिए नागर का बालक मन भाई के जन्म से पूर्व अपने अकेलेपन का साथी तलाश करता। उसी समय उनकी दोस्ती किताबों और छापे के अक्षरों से हुई। घर में 'सरस्वती', 'स्त्री-दर्पण', और पं. शिवनाथ शर्मा के दैनिक साप्ताहिक 'आनन्द' पत्रिकाएँ आती थी। पढ़ने की पर्याप्त सामग्री सुलभ होने के कारण किताबों के प्रति नागर का लगाव बढ़ता चला गया। छापे के ढेर सारे अक्षरों और वाक्यों से जूझने का चाव धीरे-धीरे नागर में साहित्यिक रुचि पैदा कर गया।

अमृतलाल नागर के पढ़ने-लिखने की यह आदत आरंभ में दादाजी द्वारा बहुत सराही गयी। कुछ वर्षों बाद स्कूल की पढ़ाई शुरू होने पर नागर के पिता को यह 'निकम्मा' पढ़ने की आदत नागवार लगने लगी। उन्होंने इसे प्रतिबंधित कर दिया। नागर पिता की मार के डर से 'विषयेतर' पढ़ाई से दूर तो हो गए किंतु मन का एक कोना वहीं लगा रहता। इससे कोर्स की पढ़ाई बाधित हुई, खास-तौर पर गणित की। गणित में जिस एकाग्रता की जरूरत होती है, नागर के लिए वह दे

पाना संभव न था। अपनी मजबूरी को उन्होंने 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' में इस तरह लिखा है–'एक जूहू तो सु गयो स्याम संग, को अराधै ईस।'

नागर छठे दर्जे में पहुँचते-पहुँचते चोरी से पढ़ने की कला में प्रवीण हो गये थे। हाई स्कूल पास करने के बाद 1934 ई. में उन्होंने इंटरमीडिएट में दाखिला लिया लेकिन तब तक डिग्री की पढ़ाई से उनका मन उचट चुका था। कॉलेज के पुस्तकालयों में वे प्रायः साहित्यिक पुस्तकें पढ़ते रहते। मोपाँसा और चेख़ोव से उनका परिचय हुआ। शरतचन्द्र चटर्जी का पूरा साहित्य तब तक वे पढ़ चुके थे। इस तरह उनका साहित्यिक विवेक विकास पा रहा था। नागर को बचपन से ही साहित्यिक वातावरण मिला था। इसीलिए साहित्य उनके संस्कार में प्रवेश कर चुका था। अनेक नाटकों के अभिनेता-निर्देशक, कवि तथा लेखक माधव मिश्र, आचार्य श्यामसुंदर दास, पं. विश्वनाथ शर्मा, ('आनंद' साप्ताहिक के संपादक) से पितामह पं. शिवराम नागर की मित्रता थी। इसीलिए इनका सान्निध्य नागर को प्राप्त हुआ। उनकी बातें सुनते हुए नागर की भाषा में लखनऊ उर्दू का असर पड़ने लगा।

अमृतलाल नागर बचपन में दोस्तों के साथ केवल शाम के एक-डेढ़ घंटे खेलते थे। बाकी का समय उनका किताबों के बीच बीतता या फिर लोगों की बातचीत का निरीक्षण परीक्षण करने में। घर के नीचे सब्ज़ी-फरोशों की सात-आठ दूकाने थीं। सुबह से चहल-पहल हो जाती थी। ग्राहकों और कबाड़ियों के मोल-भाव संबंधी झगड़ों में उन्हें बड़ा रस मिलता था। इस निरीक्षण के अनुभव का उपयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है।

अमृतलाल नागर किसी भी रचना से पूर्व सम्बद्ध क्षेत्रों का भ्रमण करते थे। इसी तरह जिस प्रकार का चरित्र उन्हें गढ़ना होता उससे मिलते-जुलते स्वभाव के दो तीन व्यक्तियों से मुलाकात करते थे। उसके बाद उनके आधार पर एक 'वर्ग-चरित्र' का निर्माण करते थे। जैसे– उनके उपन्यासों में आने वाले साधुओं और फकीरों के चरित्र, जो जनसेवा को परम-धर्म और भक्ति-भाव का चरम विकास मानते हैं, उनकी कोरी कल्पना नहीं है। नागर का बाबा रामजी जैसे अनौपचारिक साधु से घनिष्ठ संपर्क था। उसका प्रभाव उनके साधु-चरित्रों के निर्माण पर पड़ा। उस प्रकार नागर को लेखन से अधिक समय संपूर्ण रचना प्रक्रिया से गुजरने, सामग्री एकत्र करने और विचारों की रूपरेखा तैयार करने में लगता था।

1935 ई. में पिता की आत्महत्या के बाद नागर पर परिवारिक दायित्व आ गया था। इसीलिए उन्होंने एक बीमा कंपनी में डिस्पैचर की नौकरी कर ली किन्तु 18 दिनों के बाद ही इस्तीफ़ा दे दिया। इसके बाद नागर ने रामविलास शर्मा और नरोत्तम नागर जैसे मित्रों के साथ मिलकर 'अल्लाह दे' पत्रिका निकाली, बाद में इसका नाम बदलकर 'चकल्लस' कर दिया। इसमें उन्हें इच्छानुसार साहित्यिक रचना करने का अवसर प्राप्त हुआ।

नागर का पहला कहानी-संग्रह 'वाटिका' 1935 ई. में प्रकाशित हुआ। उसकी एक प्रति उन्होंने प्रेमचन्द को भेजी। प्रेमचन्द ने 12 मई 1935 ई. को उन्हें एक पोस्टकार्ड भेजा। उसमें उन्होंने 'वाटिका' को गद्यकाव्य जैसी कोई चीज़ बतलाया। साथ ही कहा कि वे जीवन से संबंधित रिअलिस्टिक कहानियाँ चाहते हैं। उनके पत्र का नागर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। नागर ने डॉ. बिन्दु अग्रवाल को दिए गए वक्तव्य में कहा है–"प्रेमचंद के इस वाक्य ने एक तरह से मेरी जन्मपत्री ही बदल दी। वे चिंतन और लेखन में मोड़ लाने का एक कारण बने।"[5]

अमृतलाल नागर के दूसरे कहानी संग्रह 'अवशेष' में प्रेमचंद के पत्र का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। इसमें संग्रहीत 'शकीला की माँ', 'जंतर-मंतर' और 'बेबी की प्रेम कहानी' में यथार्थवादी दृष्टि का विकास देखा जा सकता है। सन् 1941 में उनका कहानी-संग्रह 'तुलाराम शास्त्री' आया। इसमें गद्य-काव्य की प्रवृत्ति पूरी तरह समाप्त हो गयी।

अमृतलाल नागर के पास 1936-1937 ई. में एक अफ़ीमची किस्सागो हफ्ते में दो बार आते थे। उनके मुँह से जीवंत शैली में अनेक प्रचलित किस्से जैसे – 'फ़िसान-ए-आज़ाद', 'अलिफ़ लैला की कहानियाँ', 'तिलिस्म-ए-होशरूबा', 'सैर-ए-कसार' आदि सुने। इन्हें सुनने से नागर को उस तत्त्व की जानकारी मिली जो किस्सागो को श्रोता से और लेखक को पाठक से जोड़ता है। नागर ने लिखा है–

> "मेरा मालिक आम पाठक था जिसमें अमीर भी थे और ग़रीब भी। इसलिए किस्सागो की रुचि को मैंने जनरुचि और जनहित का किस्सा बनाकर ही पेश करने की कोशिश की है।"[6]

नागर ने यह भी इंगित किया है कि प्रारंभिक दिनों में कथा-लेखन में उन्हें प्रेमचन्द, चेख़ोव और ओ. हेनरी ने बहुत अधिक प्रभावित किया था। नागर की लेखन शैली

की यह विशेषता है कि उन्होंने लखनऊ की ज़िन्दादिल किस्सागोई को अपने शिल्प का हिस्सा जरूर बनाया पर इसके माध्यम से उन्होंने अपने पाठक को गहरे अनुभव तक ले जाने का प्रयास किया। इस प्रकार उन्होंने किस्सागोई के शिल्प को अपने तरीके से एक निश्चित उद्देश्य के लिए प्रयोग किया।

साहित्यकार व्यक्तित्व की निर्मिति के लिए नागर ने खुद को पुनःपुनःतराशा। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि भारत में केवल साहित्य लेखन (खास तौर पर हिन्दी) से परिवार का पालन-पोषण संभव नहीं है। इसीलिए आय के अन्य स्रोतों पर ध्यान देना बुरा नहीं है लेकिन साहित्य लेखन के प्रति भी ईमानदार रहना आवश्यक है। नागर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कभी फिल्मोद्योग से जुड़े तो कभी रेडियो से। यह उनके साहित्यकार व्यक्तित्व की ईमानदारी थी कि लेखन से जुड़े रहकर ही वे अलग स्रोतों से धन कमाने के बारे में सोच पाते थे। सिर्फ पैसे कमाने को ध्यये बनाना उन्हें कभी रास न आया। उन्होंने स्वीकार किया है कि वे इतने पैसे अवश्य कमाना चाहते हैं जिसे उनके बच्चों की उच्च शिक्षा में बाधा न पड़े, भ्रमण आदि का कार्यक्रम बनाया जा सके और किताबें खरीदने में समस्या न हो। जीवन में पैसे की महत्ता को नागर ने स्वीकार किया है लेकिन अपनी रचनात्मकता और साहित्यिक दायित्व को दाँव पर लगाकर नहीं।

सन् 1927-28 में नागर ने लिखना शुरू किया। उनके लेखन का आरंभ तुकबन्दी से हुआ परंतु शीघ्र ही वे कहानियाँ लिखने लगे। उन्होंने अपनी रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं में भेजना शुरू किया। नागर के रचनाकार व्यक्तित्व का यह सबल पक्ष था कि प्रारंभ में रचनाऐं अस्वीकृत हो जाने या बिना किसी प्रतिक्रिया के उपेक्षित रह जाने पर भी उनमें निराशा नहीं आई। उनमें लेखन की चाहत और लगन बनी रही।

अपने साहित्यकार व्यक्तित्व के निर्माण में नागर ने कवि रूपनारायण पाण्डेय की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया है। उन्होंने एक बार नागर से कहा था–

> "बस इसी बात को ध्यान में रक्खो। तुम लिखने की शैलियों पर जाते हो, प्लॉट बनाने की ओर तुम्हारा ध्यान ज़रा कम जाता है। पहिले प्लॉट बना लिया करो, फिर लिखा करो।"[7]

इस तरकीब से नागर ने कथानक की विशेषताओं पर ध्यान देना शुरू किया। बड़े-बड़े उपन्यासों को पढ़कर उनका कथानक लिख डालने से रचना का प्लॉट जानने की समझ बनती चली गई। रूप नारायण पाण्डेय ने नागर को बतलाया था–कहानी में कथानक का चूँकि बहुत बड़ा फैलाव नहीं होता इसीलिए कहानी में एक घटना या एक बात को लेकर कथानक गढ़ना चाहिए। छोटी कहानियों में एक ही भाव का समावेश करना चाहिए। उसमें अधिक रंग भरने की गुंजाइश नहीं होती। उन्होंने सन् 1934-35 में 'माधुरी' में नागर की कई रचनाएँ प्रकाशित की। इससे नागर को प्रोत्साहन मिला।

साहित्यिक क्षेत्र में अपनी इच्छा को नागर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

> "सच पूछो तो बस एक ही साध है, लिखते-लिखते कोई ऐसी चीज़ कलम से निकल जाये कि मैं सदा के लिए इंसान के दिल में जगह पा लूँ। इस लगन का रंग गुलाबी या हल्का लाल नहीं, बल्कि गहरा लाल है–खून का रंग।"[8]

अमृतलाल नागर फिल्मोद्योग के संवाद लेखन से भी जुड़े थे। इस कार्य से उन्होंने पैसा और शोहरत खूब कमाया पर उन्हें मन का सुकून न मिला। मुबंई (बंबई) में भी उनकी साहित्यिक गतिविधि चलती रहती थी। वहीं रहते हुए वे प्रगतिशील आन्दोलन से भी जुड़े। वहाँ उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ का विराट रूप देखा। वहाँ हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, कन्नड़ के लेखक एक मंच पर मिलते थे। वहाँ प्रगतिशील लेखक संघ के प्रमुख सज्जाद ज़हीर, पूरनचंद जोशी, रमेश सिन्हा, शमशेर बहादुर सिंह, राजीव सक्सेना, कैफी आज़मी, मजाज़ आदि से नागर की घनिष्ठता हुई। 1933 ई. से 44 ई. के बीच नरेन्द्र शर्मा के साथ नागर ने पूरनचंद जोशी आदि की सहायता से कुछ दिनों तक 'नया साहित्य' नामक पत्र निकाला।

प्रगतिशील विचारधारा के प्रभाव-स्वरूप नागर ने सामाजिक यथार्थ और सामाजिक समस्याओं को देखना शुरू किया। सन् 1946 में मद्रास में रहते हुए नागर ने कवि समित्रानंदन पंत और नरेन्द्र शर्मा के साथ पांडिचेरी की यात्रा की ओर वहाँ योगी अरविन्द और श्री माँ के दर्शन किए।

बंबई में उनकी मित्र-मंडली में प्रसिद्ध कवि नरेन्द्र शर्मा, प्राच्य विद्या के प्रसिद्ध विद्वान श्री मोतीचन्द्र, फिल्म जगत के किशोर साहू और महेश कॉल थे।

भगवतीचरण वर्मा से भी उनका घनिष्ठ संपर्क था। इस मित्र-मंडली के कारण फिल्मों से जुड़े रहने पर भी उनका साहित्यिक संस्कार दब नहीं पाया। फिर पूर्णरूपेण साहित्य लेखन की तड़प उन्हें वापस लखनऊ ले आई। लखनऊ में नियम से सुबह से ही वे गली-मुहल्लों में घूम-घूमकर पुराने लोगों से पुरानी बातें और विभिन्न जातियों के रीति-रिवाज इकट्ठा करने लगे। इस तरह वे अपनी रचना की पुख्ता भूमि तैयार करने में जुट गये।

वहाँ उनकी शामें प्रायः अपने बालबंधु ज्ञानचंद्र जैन के साथ बीतती थी। ज्ञानचंद्र जैन एक अच्छे लेखक और प्रसिद्ध पत्रकार थे। श्री भगवती चरण वर्मा यशपाल, पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि से उनका घनिष्ठ और स्नेहपूर्ण संबंध था। युवा साहित्यकार और कलाकार भी नागर से मिलने आते रहते थे।

नागर ने बचपन से साहित्यकारों से मिलने और उनका सान्निध्य पाने का नियम बना लिया था। पण्डित श्यामबिहारी मिश्र ने लिखा है–"साहित्य को टके कमाने का साधन कभी नहीं बनाना चाहिए।"

नागर ने इस उक्ति के प्रभाव के बारे में लिखा है–

> "चूँकि मैं खाते-पीते खुश घर का लड़का था इसीलिए इस सिद्धान्त ने मेरे मन पर बड़ी छाप छोड़ी। इस तरह सन् '29-30 तक मेरे मन में यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि मैं लेखक ही बनूँगा।"[9]

साहित्यकारों के सान्निध्य की इच्छा से वे काशी और कलकत्ता जाते रहते थे। शरतचन्द्र ने नागर को कई गूढ़ मंत्र दिए थे। इनमें तीन उनके गुरु पंच कोड़ी बाबू के थे–

(i) जो लिखना सो अपने अनुभव से लिखना।

(ii) अपनी रचना को लिखने के बाद तुरंत ही किसी को दिखाने, सुनाने या सलाह लेने की आदत मत डालना। कहानी लिखकर तीन महीने तक अपनी दराज़ में डाल दो। फिर ठंडे मन से स्वयं ही उसमें सुधार लाते रहो। इससे जब यशेष्ट संतोष मिल जाए तभी दूसरों के सामने लाओ।

(iii) अपनी कलम से किसी की निंदा मत करना।

(iv) यह मंत्र शरतचन्द्र का था – किसी से उधार मत माँगो। उधार की प्रवृत्ति लेखक की आत्मा को हीन और मलिन कर देती है।

ये मंत्र नागर के लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में बड़े काम आए। उनका मानना है कि शत प्रतिशत तो नहीं लेकिन नब्बे प्रतिशत उनके आचरण पर इन उपदेशों का प्रभाव पड़ा।

अमृतलाल नागर ने जिस शिद्दत से अपने साहित्यकार व्यक्तित्व का निर्माण किय,उसी शिद्दत के साथ उसका विकास भी किया। उन्होंने अपने कृतित्व के बारे में लिखा है–"अब इतना लिख चुका हूँ कि आप रबर लेकर लेखन की दुनियाँ से मेरा नाम मिटा नहीं सकते।"[10]

अमृतलाल नागर रचना-पक्रिया को पूजा मानते थे। इसीलिए पूर्ण सम्पूर्ण के साथ वे हर एक रचना के लिए लंबे शोध-कार्य में तल्लीन रहते थे। जैसे–'मानस का हंस' उन्होंने अयोध्या जाकर लिखा। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' लिखने के लिए मेहतरों की बस्तियों के चक्कर लगाए, उनके जीवन का अध्ययन किया। 'ये कोठेवालियाँ लिखने के लिए उन्होंने कोठेवालियों (वेश्याओं) के जीवन को नज़दीक से जाना, समझा। इसी तरह 'गदर के फूल' के लिए अवध के कई क्षेत्रों में घूम-घूमकर, बुजुर्गों से मिल कर गदर के बारे में उन्होंने साक्ष्य इकट्ठा किए।

साहित्य सर्जना की प्रक्रिया के बारे में अमृतलाल नागर ने लिखा है–"...उसी तरह साहित्य की बात है जैसे बच्चा प्रसव करने में एक औरत तकलीफ सहती है, फिर दूसरे बच्चे की कामना करती है।"[11]

इस वक्तव्य से हम नागर की साहित्यिक रचना के प्रति लगन और समर्पण की भावना की थाह पा जाते हैं। सृजन के निमित एक स्त्री जिस पीड़ा को सहती है वह अवर्णनीय है। बच्चे के साथ उसका जीवन नवजीवन है। सृजन के क्रम में वह मृत्यु के सन्निकट पहुंच जाती है।

काम और आराम दोनों के लिए नागर ने समय निश्चित किया था। नागर चार बजे तक काम करते थे। उसके बाद वे मित्रों से मिलते और विजया-सेवन करते थे।

विजया सेवन (भाँग) उन्हें प्रिय था लेकिन केवल शाम के वक्त, सुबह वे काम पर जुट जाते थे।

नागर के रचना कर्म की यह विशेषता है कि उसके केन्द्र में मनुष्य रहता है। केशवचंद्र वर्मा ने लिखा है–

"वे मनुष्य को ही केन्द्र में रखकर रचते हैं। यही उनकी सामर्थ्य है और सीमा भी। सूर या तुलसी भी महात्मा के रूप में नहीं समग्र मनुष्य के रूप में नागरजी को आकर्षित करते हैं।"[12]

नागर की पहली रचना तुकबंदी से फूटी थी। 'साइमन गो बैक' के जुलूस से लौटते हुए सहसा उनके मुंह से फूट पड़ाः

"कबलौं कहौ लाठी खाया करैं,
कबलौं कहौ जेल सहा करिये।
...अमरित पै ईश दया करिये।"[13]

दूसरे या तीसरे दिन ही यह रचना 'आनन्द' अखबार में छप गयी। हालाँकि 'आनन्द' के सम्पादक पं. महेशनाथ शर्मा नागर के पिता के अच्छे मित्र थे, इसीलिए इस प्रोत्साहन को नागर बड़ी बात नहीं मानते थे। नागर कई भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने फ्रांसीसी, रूसी, गुजराती, मराठी भाषाओं के श्रेष्ठ लेखकों की रचनाओं को पढ़ा। उन्होंने अपने उपन्यासों में इस अध्ययन का समुचित प्रयोग किया है। नागर का साहित्यकार व्यक्तित्व बहुत व्यापक फ़लक का है। कहीं इतिहास को पुनः खंगाला गया है, या फिर कहीं सर्वेक्षण के द्वारा नए तथ्य सामने लाये गये हैं।

वैसे तो अमृतलाल नागर के साहित्यकार व्यक्तित्व की नींव पद्य लेखन से पड़ी किन्तु धीरे-धीरे वे गद्य लेखन की तरफ मुड़ गये। उन्होंने गद्य को अभिव्यक्ति का ज्यादा सशक्त माध्यम महसूस किया। उनका कहना है–"जीवन को जितनी गहराई से कथा साहित्य में उभारा जा सकता है उतना किसी अन्य विधा में नहीं।"[14]

साहित्यकार व्यक्तित्व के प्रति नागर की सजगता का पता उनके इस वक्तव्य से चलता है–"आदमी क्या, लेखक कितना ही पढ़े, उसकी सृजनात्मकता बलवती होती है।... जो मिले, सो पढ़ो, खूब पढ़ो। इसमें जरा भी कंजूसी नहीं।"[15]

अमृतलाल नागर की हर रचना के पीछे उनकी एक समझ, एक विचार प्रवाहमान होता है। इसे हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के संदर्भ में देख सकते हैं। इसमें उन्होंने इतिहास और उपन्यास के तत्त्वों को सूक्ष्मता से विश्लेषित किया है। 'खंजन नयन' की भूमिका में नागर के दृष्टिकोण का सुन्दर विवेचन है। उन्होंने लिखा है–

"ऐतिहासिक उपन्यास को विशुद्ध इतिहास मान लेना ठीक नहीं। उपन्यास ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक-अनैतिक भले ही किसी विशेषण से युक्त हो वस्तुतः वह उपन्यास ही होता है, केवल उपन्यास। यह दूसरी बात है कि किसी ऐतिहासिक काल विशेष के चरित्रों का चित्रण करते समय लेखक उस काल की प्रमुख घटनाओं और नैतिक, राजनैतिक तथा सामाजिक, धार्मिक संस्कारों को भी चरित्रों के मनोनिर्माण में आवश्यक मान कर उन्हें समाहित कर लेता है।... तुलसी के समान सूर के जीवनवृत्त की ऐतिहासिक प्रामाणिकता भी अधर में लटकी हुई है... सीलिए दोनों ही महान पुरुषों को नायक बना कर उपन्यास रचते समय मैंने अपने ढंग से इस समस्या के ऊँट को एक करवट बैठाया है।"[16]

कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रिपोर्ताज के साथ नागर ने नाटक भी लिखे, साथ ही अभिनय और निर्देशन भी किया। पिता राजाराम नागर रंगमंच से जुड़े थे। इसीलिए नाटक नागर के संस्कार में था। नाटक के क्षेत्र में उन्होंने नये प्रयोग किये और कई नाटक खेले। नागर ने नाटकों के मंचन के लिए पारसी रंगमंच से अलग शैली अपनाई। पहली बार उन्होंने ही जालीदार पर्दे का चमत्कारिक प्रयोग किया। इसी तरह 'गोदान' (प्रेमचन्द) के नाट्य रूपांतरण और भगवती बाबू के नाटक 'रुपया तुम्हें खा गया' में भी नागर ने नये-नये प्रयोग किए।

नागर ने कई पत्रिकाएँ जैसे 'सुनीति', 'अल्लाह दे' और 'चकल्लस' निकाली। 'चक्कलस' में उन्होंने निराला के 'मतवाला की परम्परा' को आगे बढ़ाया। उसका पहला अंक 7 फरबरी 1938 ई. को निकला। व्यवसायिक अनुभव की कमी के कारण अक्टूबर 1938 ई. के अंक के साथ 'चकल्लस' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया। प्रगतिशील लेखकों द्वारा सन् 1945 में 'नया साहित्य' नामक द्वैमासिक पत्र निकाला गया। नागर भी इस पत्र के संपादक मंडल में थे।

नागर के अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से संबंधित रहते हैं। जैसे–'बूँद और समुद्र" की ताई, 'सेठ बाँकेमल' के सेठ बाँकेमल, 'खंजन नयन' के सूरदास, 'मानस का हंस' के तुलसीदास, 'ये कोठेवालियाँ' की वेश्याएँ आदि। नागर रचनाकार की संवेदना को विशिष्ट बतलाते हैं। उनका मानना है कि एक रचनाकार को साधारण-सी बात भी प्रभावित करती है और वह उसका प्रयोग अपनी रचना में करता है। नागर ने लिखा है–

"एक साधारण-सी बात भी किसी रचनाकार की संवेदना के झीने से झीने परदे तक हिला जाती है। वह उन्हें लिखने बैठ जाता है। उन अनुभूतियों

को जहाँ तक संभव हो उसी ताजगी के साथ अंकित कर देना मेरी दृष्टि में कहानीकार का खास काम है। यही रचनाकार की वह मानवीय प्रक्रिया है जो लेखक से पाठक के दिलों को जोड़ती है।"[17]

नागर ने ठाकुर चौकीदार और अपनी नानी-दादी से गदर की कहानियाँ सुनी थी। इसका प्रभाव इतना प्रवल था कि उन लड़ाइयों की कल्पना में नागर की रातों की नींद गायब हो जाती थी। उनके घर में 'सरस्वती', 'गृहलक्ष्मी', 'हिन्दू-पंच' आदि पत्रिकाएँ आती थीं। इन पत्रिकाओं की कहानियों को पढ़ने से लेखक की कल्पना को नया आयाम मिलने लगा था।

अमृतलाल नागर की रचनात्मकता के बारे में आनन्द नारायण शर्मा ने लिखा है–

"नागरजी की एक बहुत बड़ी विशेषता है उनका अद्‌भुत वर्णन कौशल। व्यक्ति हो या वस्तु, घटना हो या प्राकृतिक दृश्य–उनके जैसा सजीव, चित्रात्मक और प्रभावशाली अंकन करने वाले कथाकार कम मिलेंगे।"[18]

इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि नागर के अध्ययन के साथ उनकी वयावहारिक बुद्धि ने उनके रचना-कौशल को नया आयाम प्रदान किया। आस-पास के वातावरण में उपस्थित वस्तुएँ, सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति और घटित होने वाली घटनाओं से उन्होंने अपनी रचना के लिए विषय खोज। उनके रचना-कौशल में निरंतर विकास हुआ। इस तरह नागर के रचनाकार व्यक्तित्व का स्वरूप समय के साथ नये क्षितिज बनाता चला गया।

(iii) अमृतलाल नागर का रचना-संसार

अमृतलाल नागर ने साहित्य की अनेक विधाओं–कविता, कहानी, उपन्यास, संरमरण, रिपोर्ताज, निबंध, हास्य-व्यंग्य, नाट्य-साहित्य, बाल-साहित्य आदि में लेखन किया है। वैसे नागर ने मुख्यतः गद्य साहित्य का श्रृंगार किया है। उनके साहित्कार व्यक्तित्व के विविध-आयाम हैं और उनका रचना-संसार विविध रंगों की छटा लिए हुए है।

नागर ने रचनात्मक कार्य तुकबंदी से प्रारंभ किया, किन्तु जल्द ही उनका पद्य मोह छूट गया। वे गद्य की ओर मुड़े। सन् 1935-40 तक उन्होंने मुख्यतः

पत्रिकाओं का संपादन किया। इसी समय उन्होंने कहानियाँ विशेषतः हास्य-कहानियाँ और विनोदपूर्ण निबंध लिखे। उन्होंने मित्र रामविलास शर्मा और नरोतम नागर के सहयोग से दो साहित्यिक पत्रिकाएँ 'अल्लाह दे' और 'चकल्लस' निकाली। 20 दिसंबर 1937 ई. को 'अल्लाह दे' का पहला अंक निकला। यह पत्र नागर के मन में बसी हुई अवध की हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति को एक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करता है। 'अल्लाह दे' गलियों में फेरी लगाने वाले फकीरों की 'टेर' है। इसीलिए इस पत्रिका में 'वर्ष' के लिए 'फेरी' और 'अंक' के लिए 'आवाज़' शब्दों का प्रयोग किया गया है। 3 जनवरी 1938 ई. को प्रकाशित तीसरी आवाज़ (अंक) तक स्पष्ट हो चुका था कि यह आम लोगों को आकृष्ट नहीं कर पा रहा है। इसीलिए नागर और उनकी मित्रमंडली ने इस आम को बदलकर 'चकल्लस' कर दिया। यह एक साप्ताहिक पत्र था। 'चकल्लस' के तीस अंक निकले। 7 फरवरी 1938 ई. को इसका पहला अंक और उसी वर्ष अक्टूबर में अंतिम अंक निकला।

'अल्लाह दे' में संपादक के रूप में नागर का उपनाम 'तस्लीम' लखनवीं छपा करता था। 'चकल्लस' के संपादकों में उनका असली नाम छपने लगा। उनके मित्र नरोतम नागर का नाम संपादक मंडल में बाद में जुड़ा। चकल्लस मूलतः अवधी बोली का शब्द है। यह परिहास-विनोद या चुहलबाजी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस नाम के साथ एक और इतिहास जुड़ा है। प्रगतिशील आन्दोलन के शुरूआती दौर में बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' हिन्दी के एक प्रखर कवि और लेखक हुए थे। उनकी कहानियाँ 'लामज़हब' नाम से प्रकाशित हुई थीं। उनकी कविताओं के संग्रह का नाम 'चकल्लस था। इन कविताओं का संग्रह का नाम 'चकल्लस' था। इन कविताओं में परिहास का पुट था किन्तु ये कविताएँ बड़ी तीखी और संवेदनशील थीं। ये कविताएँ सामाजिक दुरावस्था के विभिन्न पक्षों पर आधात करती थीं। अल्पावस्था में ही पढ़ीस का देहान्त हो गया था। अपनी साहित्यिक पत्रिका का नाम 'चकल्लस' रखकर नागर के पढ़ीस को श्रद्धांजलि दी। इसके द्वारा उन्होंने लोक से अपने लगाव को भी सूचित किया। नागर ने मानक हिन्दी के साथ अन्य प्रचलित बोलियों का सामंजस्य कराके हिन्दी को और संपन्न बनाने की कोशिश की। 'चकल्लस' में अधिकांशतः नागर की ही रचनाएँ अलग-अलग नामों से प्रकाशित होती थीं।

हास्य-व्यंग्य : सन् 1935 से 40 के बीच की रचनाओं में 'नवाबी मसनद' उल्लेखनीय है। इसकी अधिकांश कहानियाँ पहले चकल्लस में छपी थी। पुस्तक के रूप में यह 1939 ई. में प्रकाशित हुई। हास्य रचना के रूप में यह अद्वितीय है। सन् 1940-41 में नागर ने 'सेठ बाँकेमल' नाम से एक बड़ी ही दिलचस्प और परिहासपूर्ण स्केच-श्रृंखला लिखी, जो 1955 ई. में इसी नाम से प्रकाशित हुई। यह हिन्दी का एक अभूतपूर्व प्रयोग है। इसमें उन्होंने पात्रों को जीवंत संवादों और उनके परिवेश के मध्य गढ़ने का प्रयास किया है। इसी तरह 1972 ई. में नागर की 'कृपया दायें चलिए', 1973 ई. में 'हम फिदाए लखनऊ' और 1985 ई. में 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित हुई। 1986 ई. में प्रकाशित 'चकल्लस' उनकी समस्त स्फुट रचनाओं का संग्रह है।

कहानी संग्रह : सन् 1935 में नागर का पहला कहानी संग्रह 'वाटिका' प्रकाशित हुआ। इसे प्रेमचंद ने गद्यकाव्य जैसी कोई चीज़ बतलाया था। इसके बाद प्रेमचंद के प्रभाव से नागर 'रिअलिस्टक कहानियाँ' लिखने लगे। सन् 1938 में प्रकाशित 'अवशेष' में यह प्रभाव साफ दिखलायी पड़ता है। नागर ने लखनऊ की ज़िन्दादिल किस्सागोई को अपने शिल्प का हिस्सा बनाया। इसी संग्रह की कहानी 'जंतर-मंतर' इस शिल्प का एक अच्छा उदाहरण है। इस कहानी में यथार्थवादिता भी है। यह कहानी शाहजी के करिश्मों और बाजार की रंगीन बातों से शुरू होती है और अंत में एक निर्धन के शोषण पर होती है जो कि अन्धविश्वासों पर पनप रहा है। इसमें नवाब नाजुक मिजाज़ के महफ़िल के किस्से हैं। वे 1937 ई. के नवाब थे और अवध के अंतिम नवाब बाज़िदअलीशाह से अपना रिश्ता जोड़ते थे। इसमें आधुनिक स्थितियों और इजादों पर बेवकूफी भरी अटकलबाजियों के किस्सों के साथ संक्रांति कालीन परिवर्तनों के सामने जड़ मानसिकता की त्रासदी भी है।

सन् 1941 में उनका कहानी संग्रह 'तुलाराम शास्त्री' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ पहले की लिखी हुई थी। 1947 ई. में भारत-विभाजन के समय होने वाली भयानक हिंसा से प्रभावित होकर उन्होंने 'आदमी, नहीं। नहीं!' शीर्षक लंबी कहानी लिखी। यह कहानी उसी वर्ष पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हुई। इस कहानी में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दंगे से भड़कने वाली हिंसा को दर्शाया है। बंबई प्रवास के दौरान उन्होंने कुछ और कहानियाँ लिखी, जो 1948 ई. में

'पाँचवाँ दस्ता' शीर्षक से संगृहीत और प्रकाशित हुई। इसके बाद 1955 ई. में 'एक दिल हज़ार अफ़साने' और 'ऐटम बम' प्रकाशित हुई।

नागर की कहानियों के साथ एक समस्या यह है कि वे चरित्र को गढ़ने में इतना अधिक ध्यान देते हैं कि कभी कभी वह कहानी न बनकर रेखाचित्र बन जाता है। यह अलग बात है कि रचना सशक्त होती है।

नागर प्रारंभ में सरशार की रचनाओं से बहुत अधिक प्रभावित थे। उस समय वे 'तस्लीम लखनवीं नाम से लिखते थे। इस प्रभाव से वे पूर्णतया कभी मुक्त नहीं हो पाये। ख़ासतौर पर मुस्लिम पात्रों और परिस्थितियों के वर्णन में यह प्रभाव बना रहा। 1963 ई. तक नागर के लेखन में प्रौढ़ता आ चुकी थी फिर भी 'पीपल की परी' (1963 ई.) में उनके प्रारंभिक लेखन की छाप दिख पड़ती है।

नागर की कहानियों की एक विशेषता उसका परिहास-बोध है। अपनी कलात्मक सार्थक्ता का परिचय देते हुए वे हल्के-फल्के ढंग से किसी बात की शुरूआत करते हुए पाठक को किसी विषम समस्या तक ले जाते हैं। उसके कारण पाठक उस समस्या को अच्छी तरह समझ जाता है। इस कोटि में 'कौड़ी के तीन' (1982 ई) और 'कालदंड की चोरी' (1963 ई.) जैसी रचनाएँ आती हैं। 'कालदंड की चोरी' जासूसी कथाओं की अद्‌भुत पैरोडी है। 1970 ई. में 'मेरी प्रिय कहानियाँ, और 'भरतपुत्र नौरंगीलाल', 1984 ई. में 'सिकंदर हार गया' और 1986 ई. में उनकी संपूर्ण कहानियों का संकलन 'एक दिल हज़ार अफ़साने' शीर्षक से हुआ। इन कहानियों में नागर ने समाज के विभिन्न वर्गों की व्यवस्थाओं, रूढ़ियों, तौर तरीक़ों और समस्याओं को विश्वसनीय और यथार्थपरक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

उपन्यास : अमृतलाल नागर मुख्यतः उपन्यास लेखन के लिए जाने जाते हैं। उनका पहला उपन्यास 'महाकाल' है। 1947 ई. में प्रकाशित यह उपन्यास 1943 ई. के बंगाल के भयानक अकाल की विभीषिका पर आधारित है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों का बंगाल का यह अकाल प्राकृतिक नहीं बल्कि मानव द्वारा आमंत्रित था। प्रशाासन की जनता के दुःख-दर्द के प्रतिक्रूर उदासीनता और ज़माख़ोर व्यापारियों का लालच इस अकाल का कारण था। इस उपन्यास क एक खास बात यह है कि इसकी

पृष्ठभूमि बंगाल के एक गाँव की है और इसके लेखक उत्तर प्रदेश के एक हिन्दी भाषी हैं।

1956 ई. में नागर का उपन्यास 'बूँद और समुद्र' प्रकाशित हुआ। यह एक महत्वपूर्ण समाजिक उपन्यास हैं इसमें बूँद 'व्यष्टि' और समुद्र 'समष्टि' का प्रतीक है। इस तरह यह उपन्यास व्यष्टि के समष्टि में समाहित होने की कथा है। नागर 'समष्टि' (समाज) को अधिक महत्त्व देते हैं लेकिन 'व्यष्टि' (व्यक्ति) की महत्ता को भी बनाए रखते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे कि अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' में लिखा है–

"ये दीप अकेला स्नेह-भरा
है गर्व भरा मदमाता
इसे भी पंक्ति को दे दो।"

इस उपन्यास की घटनाओं का स्थल लखनऊ और मुख्यतया उसके प्रसिद्ध मुहल्ले चौक की गलियाँ हैं लखनऊ के मुहल्ले, वहाँ के तौर-तरीकों और रहन-सहन की नागर को जानकारी थी। इसका उन्होंने भरपूर प्रयोग किया है। नागर की हर रचना के पीछे एक लंबा शोध कार्य होता है। उन्होंने वर्षों अध्ययन करने के बाद चौक की संस्कृति को उपन्यास का विषय बनाया है। इस उपन्यास के शीर्षक के बारे में एक दिलचस्प वाकया है। पाण्डिचेरी में उन्हें 'बूँद और समुद्र' नाम सूझा था। पहले उनका विचार बना कि बंग दुर्भिक्ष के संबंध में जो उपन्यास लिखा जा रहा है उसी का यह नाम रखा जाए। कवि नरेन्द्र को यह विचार पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा कि यह अगले उपन्यास का नाम होगा। इस तरह विषय के चयन के पूर्व भावी उपन्यास का नामकरण हो गया। सन् 1948 में बम्बई से लखनऊ वापस आने पर उन्होंने गली-मुहल्लों में घूम-घूमकर विभिन्न जातियों के बड़े बूढ़ियों से मिल-जुलकर सामाजिक रीति-रिवाजों के पुराने किस्सों को ढूँढना शुरू किया। किस्से एकत्रित होते चले गये किन्तु उसे उपन्यास का रूप देने में समय लगा।

नागर ने अपनी रचनाओं के लिए कई लोगों को देखकर 'एक वर्ग चरित्र' बनाने का अभ्यास शुरू कर दिया था। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' में लिखा है कि इस उपन्यास की प्रमुख पात्र 'ताई' का चरित्र उन्होंने तीन लोगों को देखकर गढ़ा था। इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही नागर हिन्दी

कथाकारों की पहली पंक्ति स्थापित हो गए। इसका रूसी में अनुवाद हुआ। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद नेशनल बुक ट्रस्ट ने प्रकाशित किया। इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद नागर ने रेडियों की नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र लेखन पर ही पूर्णतः आश्रित हो गये।

सन् 1959 ई. में भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता से नागर का उपन्यास 'शतरंज के मोहरे' प्रकाशित हुआ। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है और 1957 ई. के गदर के बीस-तीस साल पहले अवध के इलाके और विशेषतः उसकी राजधानी लखनऊ की घटनाओं और परिस्थितियों से संबंधित है। इसे 'गदरकालीन उपन्यास की पूर्वपीठिका' के रूप में लिखा गया था। इस उपन्यास की पहली विशेषता है कि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए काल्पनिक पात्रों को जोड़कर कथ्य को जीवंत बनाया गया है। दूसरी, इसमें कोई मूल्यपरक निर्णय दिए बिना ह्रासोन्मुख समाज की स्थिति को समाजशास्त्रीय दृष्टि से, इतिहास बोध के साथ व्याख्यायित किया गया है। इसमें केवल बादशाहों के उत्थान-पतन की कथा न कहकर छोटी-छोटी उपकथाओं के द्वारा तत्कालीन अवध के पूरे समाज की जीवंत प्रस्तुति की गई है। इसमें जमींदारी प्रथा और स्थानीय शासकों के शोषण और उत्पीड़न से पीड़ित जनता की विवशता और आक्रोश का वर्णन किया गया है। साथ ही जनसाधारण में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़ियों और कुरीतियों को भी पूरी वीभत्सता के साथ उद्घाटित किया गया है।

TH-17861

सन् 1960 में नागर का उपन्यास 'सुहाग के नुपूर' प्रकाशित हुआ। इसे दक्षिण भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखा गया है। यह तमिल के महाकवि इलंगावेन का महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम' पर आधारित है। नागर ने 'शिलप्पदिकारम' की कथावस्तु को नवीन रूप से देखकर अपनी रचना प्रस्तुत की है। यह उपन्यास हमें प्राचीन कथाओं के रोमांस से मोहित करता है। इसमें नागर ने नारी जीवन के कई पक्षों, वेश्या और कुलवधू–के करूण संदर्भों पर एक आकर्षक कथा की रचना की है। इस उपन्यास में नागर ने सम्बद्ध समय के समाज की व्यापारिक स्थिति, व्यावसायियों का वैभव, सामाजिक स्थिति, उत्सव, सामाजिक समारोहों और कलाओं का वर्णन किया हैं नागर के साथ इतिहास बोध सदा लगा रहता है। यह इतिहास बोध पात्रों और उनके परिवेश को अतीत और भविष्य के साथ जोड़कर देखता है।

यह उपन्यास नागर के इतिहास की समझ का उत्कृष्ट उदाहरण है। नागर ने 1952 ई. में 'सुहाग के नुपूर' के ही नाम से इसी विषय पर एक रेडियों नाटक लिखा था। आकाशवाणी मद्रास द्वरा इसका तेलगू रूपांतरण प्रसारित हुआ था।

1960 ई. में नागर का उपन्यास 'अमृत और विष' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में नागर ने कुछ शिल्पगत प्रयोग किए हैं। इस कृति के लिए 1967 ई. में नागर को 'साहित्य अकादमी' सम्मान मिला इस उपन्यास में कहानी दो स्तरों पर चलती है। एक उपन्यास के आत्मकथ्य के रूप में और दूसरा इसके अंदर अंतर्निविष्ट है, जो खंड-खंड में लिखा गया है। इसमें अरविंद शंकर और उनके परिवार की कथ्य के द्वारा समाज के कई पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। इस परिवार के सभी सदस्य अपनी महत्त्वकांक्षाओं के पीछे पागल या हताश है। इस उपन्यास में अंतर्जातीय प्रेम-विवाह उलझनों का वर्णन हैं यह एक यथार्थवादी समाजवादी उपन्यास है। नागर के अधिकांश प्रमुख पात्र जीवन की उलझनों से तंग आकर आत्महत्या कर लेते हैं। इस उपन्यास में अरविंदशंकर के बेटे उमेश शंकर, जो कि आई.सी.एस. हैं, ने आत्महत्या की है। यह उपन्यास अपनी विषय-वस्तु को स्पष्ट करने में पूरी तरह समर्थ रहा है।

1968 ई. में नागर का उपन्यास 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' प्रकाशित हुआ। इसमें उन्नीसवीं शताब्दी का समय लिया गया है। इसकी कहानी मेरठ (उ.प्र.) के एक इलाके की है। इसके प्रमुख पात्र मुन्नी और बशीर खाँ हैं। बशीर खाँ पहले मुन्नी को आश्रय देकर सहायता करता है लेकिन वाद में उसे दस हज़ार अशर्फियों में नवाब समरू को बेच देता है। यह मूलतः ऐतिहासिक रोमांस और उन्नसवीं सदी के राजनीतिक दाँव-पेंच, उत्थान-पतन, विलासिता और व्यक्तिगत महत्वकांक्षा की कहानी है। इस उपन्यास का प्रमुख लक्ष्य किस्सागोई है लेकिन नागर किस ऐतिहासिक वातावरण की रचना करते हैं उसे अंत तक निभाते हैं।

नागर का उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' 1972 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें इतिहास और पुराण की मिश्रित छटा दिखलायी पड़ती है। इसकी तैयारी में नागर को पाँच-सात वर्ष का लंबा समय लग गया था। उपन्यास नवम्बर 1967 ई., 31 जनवरी, 1971 ई. के बीच लिखा गया। नागर ने इसका अंतिम भाग नैमिषारण्य में लिखा था। नैमिषारण्य उ.प्र. राज्य में स्थित है। यह गोमती नदी के तटा पर बसा

एक पावन क्षेत्र है। इस क्षेत्र का राष्ट्रीय महत्व है। यहाँ सारे पुराण, भागवत, महाभारत आदि ग्रंथ सुनाये गये थे। नागर का मानना है कि नैमिषारण्य में ही अवतारवाद द्वारा अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का उदय हुआ था। इसी पृष्ठभूमि में नागर ने 'एकदा नैमिषारण्ये' लिखा है। इस उपन्यास में नागर ने कठिन कथासूत्रों द्वारा सांस्कृतिक विकास और द्वंद्व की स्थितियों को स्पष्ट करने की कोशिश की है।

नागर ने उपन्यासों में 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' जीवनीपरक उपन्यास है। 'मानस का हंस' तुलसी के जीवन पर आधारित है और 'खंजन नयन' सूरदास के। इन दोनों के जीवन के बारे में कोई अंतःसाक्ष्य या प्रामाणिक पुस्तक उपलब्ध नहीं है। इन दोनों के बारे में केवल जनश्रुतियाँ और किंवदतियाँ ही मिलती हैं इस तरह नागर ने एक चुनौती को स्वीकार करते हुए सूर और तुलसी के साहितय पर शोध कार्य किया। नागर ने दोनों महाकवियों की रचनाओं के माध्यम से भक्ति की भावुकता के बदलते रंगों और मनःस्थितियों में उनकी भौतिक परिस्थितियों को पहचानने की कोशिश की है। नागर ने दोनों महाकवियों से जुड़े स्थानों का भ्रमण किया। 'मानस का हंस' के एक बड़े भाग की रचना उन्होंने अयोध्या के 'तुलसी स्मारक भवन' में रहकर की। इस उपन्यास को नागर ने 4 जून 1971 ई. को लिखना आरंभ किया और इसका अंत 23 मार्च 1972 ई. को रामनवमी के दिन किया।

इसी तरह 'खंजन नयन' का अधिकांश भाग नागर ने मथुरा में लिखा है। इसका अंतिम परिच्छेद परसौली की सूरकुटी में पूरा हुआ। उपन्यास का आरंभ 30 नवम्बर 1977 ई. और अंत 28 अक्टूबर 1980 ई. को (कृष्ण की महारास लीला के दिन) हुआ। इन दोनों उपन्यासों के बारे में श्री लाल शुक्ल का मानना है–"ये दोनों उपन्यास साधारण परिवेश से निकलते हुए प्रत्यक्षतः दो साधारण चरित्रों के संघर्ष और उपलब्धि की असाधारण कहानियाँ है।"[19]

श्रीलाल शुक्ल का यह भी मानना है कि दूसरे उपन्यासों की तरह ही युग और परिवेश को ऐसी सघनता और विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि कहीं कहीं वे प्रमुख पत्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

'मानस का हंस' के अंतिम अंश तक तुलसीदास 'रामचरित मानस' की रचना कर चुके थे। तुलसीदास ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में लोकमंगल की भावना को चरितार्थ किया है। नागर ने तुलसीदास और सूरदास दोनों को ही जीवन के अंतिम दिनों में उच्चतर मानवीय भावनाओं से पूर्ण कर संत का रूप प्रदान किया है। नागर अपने जीवन में बाबा राजी नामक एक औपचारिक साधु से मिले थे। बाबा रामजी पागलों की निष्काम भाव से सेवा करते थे। इसी सेवा भाव से प्रभावित नागर ने तुलसी और सूर में सेवा भावना को सफलता पूर्वक प्रदर्शित किया। 'मानस का हंस' का प्रकाशन 1973 और खंजन नयन' का 1981 ई. में हुआ था। इस प्रकार इन दोनों उपन्यासों में मुख्यतः नागर ने तुलसी और सूर की जीवनी प्रस्तुत की है।

अमृतलाल नागर ने मेहतरों के जीवन पर एक उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल' लिखा। यह उपन्यास 1978 ई. में प्रकाशित हुआ। यह एक यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें नागर उत्तर प्रदेश के मेहतरों के समाज का बड़ा संवेदनशील वर्णन किया है। इस उपन्यास में नागर ने प्रमुख नारी पात्र निरगुणिया के माध्यम से मेहतर समाज की विसंगतियों को उभारने का प्रयास किया है। यह अलग बात है कि निरगुणिया को केन्द्र में बना कर लिखे जाने के कारण यह उपन्यास मूलतः एक शोषित प्रताड़ित नारी की जीवनगाथा बन गया हैं इतना अवश्य है कि इसमें नागर मेहतरों के जीवन का समाजशास्त्रीय परिदृश्य उपस्थित करने का एक सार्थक प्रयास किया है। नागर का मानना है कि मेहतर समाज का अंग बन जाने के बाद निरगुणिया के साथ जो कुछ भी होता है वह मेहतर समुदाय के साथ होने वाले सामान्य और असामान्य प्रसंगों का हिस्सा भर है। इसीलिए प्रकारांतर से यह मेहतर समाज की ही कहानी है। नागर ने 'नाच्यौ बहुत गोपाल' शीर्षक सूरदास के प्रसिद्ध भजन "अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल" से लिया है।

1982 ई. में नागर का 'बिखरे तिनके' नाम से एक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसमें नागर ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिखाया है। इस उपन्यास में नागर ने हर निम्न वर्ग की अपने से उच्च वर्ग में सम्मिलित होने की चाहत को दिखलाया है। इस उपन्यास में उन्होंने रूढ़ियों और अंधविश्वासों से जकड़े हुए लोगों का वर्णन किया है। इस उपन्यास में नागर ने एक नवयुवक मंडली के द्वारा नयी पीढ़ी में

समाजिक बदलाव की तलाश की है। वस्तुतः उन्हें नयी पीढ़ी में आशा की किरणें दिखलयी देती है।

नागर ने 'अग्निगर्भा' नामक एक उपन्यास लिखा है। यह उपन्यास 1983 ई. में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास आकार में छोटा, उपकथाओं की बहुलता से मुक्त और संरचना की दृष्टि से सुसंगठित है। इस उपन्यास में नागर ने आधुनिक भारतीय समाज में तथाकथित शिक्षित व्यक्तियों के बीच नारी की ऐसी स्थिति का वर्णन किया है जो हमारे अंदर आक्रोश उत्पन्न करती है। इस उपन्यास में नागर ने एक सुशिक्षित नारी के जीवन-यापन और उन्नति में समाज के द्वारा उत्पन्न बाधाओं का वर्णन किया है। उन्होंने दिखलाया है कि इस समाज में एक स्त्री को कई तरह के समझौते करने पड़ते हैं। यह कई स्तरों पर शारीरिक और मानसिक शोषण का शिकार बनती है। इस उपन्यास में एम.ए. फर्स्ट क्लास फर्स्ट सीता को रामेश्वर शुक्ल से विवाह के बाद लगता है कि उसका कोई अस्तित्व नहीं है। रामेश्वर उसकी कमाई पर अपना अधिकार समझता है। उसकी बौद्धिकता का दोहन करता है। उसे बच्चा पैदा करने की मशीन और भोग की वस्तु मानता है। इस प्रकार शिक्षित होने के बाद भी सीता खुद को असहाय और निर्बल पाती है। अंत में वह विद्रोह करती है लेकिन उसका विद्रोह सफल नहीं हो पाता और मुहल्ले के ही एक गुंडे द्वारा उसकी हत्या कर दी जाती है। इस प्रकार यह उपन्यास एक सजग और कुशग्रबुद्धि युवती के संघर्ष और असफल प्रतिरोध की गाथा बन कर रह जाता है।

'करवट' और 'पीढ़ियाँ' नागर के अंतिम उपन्यास है। इन उपन्यासों का प्रमुख घटना क्षेत्र लखनऊ है। 'करवट' 1995 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में 1854 ई. से 1902 ई. तक के कालखंड का चित्रण है। 'पीढ़ियाँ' अपने आप में स्वतंत्र उपन्यास है, पर 'करवट' में नागर ने जिस परिवार की कहानी कही है, उसी के सूत्रों को 1902 ई.के बाद 'पीढ़ियाँ' में उठाया गया है। 'करवट' उपन्यास में नागर ने गदर (1857) का पूरा परिदृश्य भले उपस्थित न किया हो, पर उसकी अनुगूँज सुनाई पड़ती है। उन्होंने 'पीढ़ियाँ' में 1942 ई. के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को प्रमुखता से दिखलाया है। ये दोनों उपन्यास स्वतंत्र होते हुए भी अपने कथा-प्रवाह की निरंतरता और कालक्रम के कारण एक बड़े कथानक के दो भाग भी माने जा सकते हैं। इस उपन्यास में नागर ने राष्ट्रीय आन्दोलन संबंधी बहुत से विवरण

दिए हैं। इस कारण यह उपन्यास की जगह इतिहास लगने लगता है। यह स्थिति जयंत और सुमंत के राजनीतिक पात्र होने के कारण बनी। इससे अलग 'करवट' के प्रमुख पात्र वंशीधर और देशदीपक (वंशीधर का पुत्र) सामाजिक बदलाव के लिए काम करते हैं। इस उपन्यास को नागर ने अपनी मृत्यु के लगभग दो महीने पूर्व दिसंबर, 1989 ई. को पूरा किया था। इसका प्रकाशन 1990 ई. में हुआ। नागर अपने जीवन के अंतिम समय तक लेखन के प्रति अटूट निष्ठा के साथ समर्पित रहे।

संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध आदि – सन् 1957 को अमृतलाल नागर का 'गदर के फूल' प्रकाशित हुआ। नागर की 1857 के गदर में बहुत दिलचस्पी थी। वे इसे केन्द्र बना कर उपन्यास लिखना चाहते थे। नागर ने गदर से संबंधित विष्णुभटट गोड्से के 'माझा प्रवास' का 1946 ई. में 'आंखों देखा गदर' नाम से अनुवाद किया है। नागर ने 1957 ई. में उतर प्रदेश के तत्कालीन सूचना निदेशक श्री भगवतीशरण सिंह की प्रेरणा से अवध में गदर सम्बन्धित क्षेत्रों में घूम-घूमकर और बड़े-बुजुर्गों से मिलकर गदर की घटनाओं, संस्मरणों, किंवदंतियों और लोकगीतों का संकलन शुरू किया। नागर का मानना है कि पूरे देश में अकेले भ्रमण करना संभव नहीं था इसीलिए उन्होंने केवल अवध का चयन किया था। अवध को चुनने के सन्दर्भ में उन्होंने अपने चयन को विस्तृत आयाम प्रदान करते हुए लिखा है–

> "अवध को मैंने देगची के एक चावल की तरह टटोला है, जो यहाँ है वह भारत देश में है। भारत की सांस्कृतिक एकता इस प्रकार की है कि अपनी विशेषताओं को लेकर उसका कोई भी भाग पूर्णरूप से स्वच्छन्द नहीं।"[20]

साहित्य में मूल्यों का महत्त्व है। इसीलिए नागर ने गदर का अध्ययन कर उसमें निहित मूल्यों की तलाश की है। उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार स्वजनों की चिता से फूल चुने जाते हैं जो उनका सार-तत्व होता है, उसी प्रकार गदर के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले वीरों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालना आवश्यक है। नागर का मानना है कि उन वीरों के जीवन में निहित राष्ट्रीय भावना को पहचान कर हम गदर के मूलभूत भाव को पहचान सकते हैं। वे आज़ादी के नायक गदर के फूल हैं।

नागर का मानना है कि भारत में 1857 से संबंधित कोई ढंग का इतिहास नहीं लिखा गया है। इसीलिए जनश्रुतियों के मध्य पैठ कर ही इतिहास की गैल पहचानी जा सकती है। इस रचना द्वारा नागर ने इस तथ्य का पता लगाया है कि

एक शताब्दी बीत जाने के बाद भी इतिहास की यह घटना लोकमानस में कैसी अनुगूँज उत्पन्न कर रही है। नागर की यह रचना एक साथ सर्वेक्षण, रिपोर्ताज, संस्मरण, इतिहास और उपन्यास सब है।

नागर की रचना 'ये कोठेवालियाँ' का प्रकाशन 1960 ई. में हुआ था। यह एक तथ्यपरक कृति है। यह नाच-गाने का पेशा करनेवाली स्त्रियों के साक्षात्कारों और विवरणों पर आधारित एक मार्मिक रेखाचित्र है। इसमें नागर ने समाज के एक उपेक्षित वर्ग की संश्लिष्ट तस्वीर उभारी है। इस रचना के लिए नागर ने कोठेवालियों (वेश्याओं) से मुलाकात की थी। नागर ने उनके जीवन के दर्द कोनजदीक से जाना और समझा। इसमें दुःख, वीभत्स और करूणा का जो रूप उपस्थित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अमृतलाल नागर को बचपन से ही साहित्यकारों का सान्निध्य प्राप्त होता रहा था। उनके साथ बिताए समय के अनुभव को उन्होंने 'जिनके साथ जिया' संस्मरण में लिखा है। यह संस्मरण 1973 ई. में प्रकाशित हुआ है। इसी तरह नागर ने 'चैतन्य महाप्रभु' नामक एक जीवनी लिखी। यह जीवनी 1978 ई. में प्रकाशित हुई। इस जीवनी का संबंध बंगाल से है।

नागर ने 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी है। यह आत्मकथा 1986 ई. में प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में नागर ने घटनाओं का विवरण कालक्रम के अनुसार न देकर उस रूप में दिया है जिस तरह वह उनकी स्मृति में आती जा रही थी। टुकड़ों में व्यक्त करने के कारण शायद नागर ने इस आत्मकथा का नाम 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' रखा है। इस आत्मकथा से हमें नागर के जीवन के साथ उनकी रचना प्रक्रिया की भी जानकारी मिलती है।

1986 ई. में 'साहित्य और संस्कृति' नाम से नागर ने निबंधों का संग्रह प्रकाशित हुआ। हिन्दी में इन निबंधों का विशिष्ट स्थान है। इसमें नागर के कुछ चिंतनपरक और कुछ संस्मरणात्मक निबंधों का संग्रह है। 'हम हिन्दी का उर्दूकरण क्यों नहीं चाहते', 'हिन्दी और मध्यवर्ग का विकास', 'आदिकवि वाल्मीकि' और 'श्वपच ऋषि की संताने, 'पिया जाने आलम', 'जीवन की कुरूपता का महत्त्व' आदि निबंध उनके गहन चिंतन और अध्ययन के परिणाम हैं।

नाट्य साहित्य : नागर के पिता पं. राजाराम नागर नाटक से जुड़े हुए थे। इसीलिए नाटक नागर के संस्कार में था। नागर ने लगभग पंद्रह नाटक और प्रहसन लिखे हैं। 1956 ई. में उनका नाटक 'युगावतार' प्रकाशित हुआ। यह नाटक भारतेन्दु के जीवन पर आधारित था। इस नाटक का नागर ने इलाहाबाद में निर्देशन किया था। उन्होंने 1963 ई. में 'नुक्कड़ पर' नाटक लिखा था। 1981 ई. में प्रकाशित इस नाटक को नागर ने रंगमंच के लिए लिखा था। इसमें उनका लड़कपन का नौटंकी प्रेम बरकरार है। इस नाटक में मिल मजदूरों की झलक दिखलायी पड़ती है। नागर ने 'चढ़त न दूजो रंग' नाम से दूरदर्शन के लिए एक नाटक लिखा था। यह नाटक 1982 ई. में प्रकाशित हुआ।

सन् 1948 में लखनऊ वापस लौटने पर प्रतिभा नागर ने पास-पड़ोस के निर्धन बच्चों को पढ़ाना शुरू किया था । नागर शनिवार को उनसे छोटे-छोटे नाटक या छाया नाटक करवाने लगे। नागर ने एक चैरिटी शो के लिए प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का नाट्य रूपांतरण प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस नाटक का निर्देशन भी किया था। नागर ने 1949 ई. में प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' और 1954 ई. में स्वलिखित नाटक 'परित्याग' का मंचन कराया। नागर ने 'परित्याग' का निर्देशन भी किया था। नागर ने 1953 ई. में प्रेमचंद के 'ईदगाह' के नाट्य रूपांतरण का भी निर्देशन किया था।

अमृतलाल नागर ने 1953-1956 ई. की अवधि में लखनऊ आकाशवाणी के ड्रामा प्रोड्यूसर के पद पर काम किया था। इस कार्यकाल में उन्होंने अनेक रेडियों नाटक लिखे और अपने निर्देशन में उन्हें आकाशवाणी से प्रसारित करवाया। उन्होंने लखनऊ की एक छोटी-सी संस्था 'बालनाट्य अकादमी' के शिविर में नाटक संबंधी रोचक व्याख्यान भी दिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के शीतलाप्रसाद त्रिपाठी और भारतेन्दु हरिशचन्द्र का रंगमंच के प्रति लगाव नागर की नाट्य प्रेरणा का स्रोत है। त्रिपाठी और भारतेन्दु के लिए रंगमंच समाज की सामूहिक-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति का मार्ग था। यह रंगमंच उनके लिए समाज में उदात्त भावों को जगाने का साधन भी था। आकाशवाणी और रंगमंच के लिए लिखे गऐ नागर के कई नाटकों में भी समाज में उदात्त भाव जगाने का प्रयास दिखलायी पड़ता है। बंबई में रहते हुए नागर ने

पागलों से संबंधित सामग्री एकत्रित की थी। उसका उपयोग उन्होंने 'चक्करदार सीढ़ियाँ और अंधेरा' में किया है। वे नाटक 'बाल की बात' (1974 ई.) 'चंदनवन' (1976 ई.), 'चक्करदार सीढ़ियाँ और अंधेरा' (1977 ई.) और 'उतार-चढ़ाव' (1980 ई.) है।

बाल साहित्य : हिन्दी में बाल साहित्य बहुत कम लिखे गये हैं। इस क्षेत्र में अमृतलाल नागर ने सराहनीय प्रयास किया है। नागर को अपने भतीजे, दोहता और पोते को कहानी सुनानी पड़ती थी। अधिकांश प्रचलित कहानियाँ बच्चे पत्र-पत्रिकाओं और कॉमिक्स में पढ़ लेते थे। इसीलिए नागर ने बच्चों को नयी कहानियाँ सुनाने के लिए बाल कहानियाँ लिखना शुरू किया। एक बार नागर ने बच्चों को चार परियों की कहानी सुनाई। इस कहानी में परियों की जान खतरे में पड़ जाती है और दूसरे उन्नत ग्रह के स्कूली बच्चे उनकी जान बचाते हैं। यह कहानी बच्चों ने बहुत पसंद की। इसके बाद नागर ने बच्चों को नायक बनाकर बहुत-सी कहानियाँ लिखीं। नागर ने राजकुमारों की बजाय आज के युग के बालकों को नायक बनाया। उन्होंने अपनी एक कहानी में एक जादूगर और डायन को वैज्ञानिक से पकड़वाया है। इस कहानी में नागर ने कल्पना पर यथार्थ की विजय दिखलायी है। नागर ने बाल कहानियाँ लिखने के लिए बच्चों में लोकप्रिय कॉमिक्स पढ़े। उन्होंने देखा कि कॉमिक्स के नायक मानवीय करूणा से बड़े-बड़े काम करते हैं। ये नायक अपने देश की महिमा को भी उजागर करते हैं। इस तरह से बच्चे उन नायकों के साथ उसके देश से भी प्रभावित होते हैं। इसी प्रेरणा से नागर ने 'बजरंगी नौरंगी' लिखा है। यह 1969 ई. में प्रकाशित हुआ था।

1946 ई. में नागर का बाल कहानियों का एक संग्रह 'नटखट चाची' के नाम से प्रकाशित हुआ। 1950 ई. में नागर का 'निंदया आ जा' प्रकाशित हुआ। 1969 ई. में 'बजरंगी पहलवान' नाम उनकी रचना का बाल-साहित्य में अमूल्य योगदान है।

बच्चों को भारत के इतिहास और अपनी गौरवपूर्ण पौराणिक पृष्ठभूमि से परिचित कराने के लिए भी उन्होंने रचना की है। इस संदर्भ में 1970 ई. में 'इतिहास के झरोखे', 1971 ई. में छः खण्डों में 'बाल महाभारत', 1982 ई. में 'हमारे युगनिर्माता', और 1982 ई. में 'छःयुगपुरुष' उनकी महत्त्वपूर्ण प्रकाशित रचनाएँ हैं। इसके अलावा नागर की 1972 ई. में 'बजरंगी स्मगलरों के फंदे में', 1982 ई. में

'अकल बड़ी या भैंस' और 1991 ई. में 'सतखंडी हवेली का मालिक' नामक रचनाएँ प्रकाशित हुई। नागर की 'आओ बच्चे नाटक लिखें' नामक लघु पुस्तिका साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित हुई। यह किशोरों के लिए दिए गए एक रोचक व्याख्यान (1986 ई.) पर आधारित है।

इस प्रकार नागर ने बाल-साहित्य को भी समृद्ध किया है। उन्होंने जानवरों की कहानियों में ताजगी लायी। साथ ही नागर ने काल्पनिक नायकों को नये-नये देशों, पहाड़ों, नदियों, के वास्तविक भूगोल से जोड़कर बच्चों के लिए शिक्षा को रुचिकर बनाया है।

अनूदित साहित्य : नागर को विविध भारतीय और विदेशी भाषाओं का ज्ञान था। इसीलिए उन्होंने विभिन्न देशी और विदेशी भाषाओं से हिन्दी में रचनाओं का अनुवाद कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। अपने आरंभिक दिनों से ही नागर चेख़ोव से प्रभावित थे। उन्होंने 'काला पुरोहित' नाम से चेख़ोव की कहानियों का अनुवाद किया। यह अनुवाद 1939 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी तरह वे मोपासां से भी प्रभावित थे। उन्होंने 'बिसाती' नाम से मोपासां की कहानियों का अनुवाद किया। यह अनुवाद 1938 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संबंध में नागर ने लिखा है–

> "पश्चिमी साहित्य के अध्ययन ने मुझे नया होश देना शुरू कर दिया था। अपनी तब तक की लिखी कहानियाँ मुझे मोपासां और चोख़ोव की कहानियों के आगे निकम्मी मालूम पड़ने लगी। यही नहीं, प्रेमचंद और कौशिक को छोड़कर हिन्दी में बहुत-से कहानी -लेखक, जिन्हें तब तक मैं बहुत अच्छा समझता था, मेरे मन से उतरने लगे।"[21]

नागर ने मादाम बावेरी की रचनाओं का 'प्रेम की प्यास' नाम से संक्षिप्त भावानुवाद किया। यह अनुवाद 1937 ई. में प्रकाशित हुआ। 1957 ई. में गदर की शतवार्षिकी बड़ी धूम से मनाई गई। उन दिनों नागर गदर के इतिहास में डूबे हुए थे। उन्हें विष्णुभट्ट गोड्से की 'माझा प्रवास' मिली। इसमें ठाणे से लेकर ग्वालियर, झाँसी तक की यात्रा और लखनऊ का जिक्र आया था। नागर को पुस्तक पसंद आयी। उन्होंने इसक अध्ययन किया और 'आंखों देखा गदर' नाम से इसका अनुवाद किया। इसका प्रकाशन 1955 ई. में हुआ। 1957 ई. में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ।

इसी तरह नाटक के लेखन और मंचन के क्रम में नागर विविध भाषाओं के नाटकों के संपर्क में आए और उनसे प्रभावित हुए। 1955 ई. में उन्होंने कन्हैयालाल

मणिकलाल मुंशी के गुजराती नाटकों का 'दो फक्कड़' नाम से अनुवाद किया था। नागर ने मामा वरेरकर के मराठी नाटकों का 'सारस्वत' नाम से अनुवाद किया, जिसका प्रकाशन 1956 ई. में हुआ।

नागर के रचना संसार पर एक विहंगम दृष्टि डालने के लिए उनकी रचनाओं की सूची दी जा रही है–

उपन्यासः

1. महाकाल (1979 ई.) : 'भूख' शीर्षक से 1970 ई. में पुनः प्रकाशित हुआ।
2. बूँद और समुद्र (1956 ई.)
3. शतरंज के मोहरे (1959 ई.)
4. सुहाग के नुपूर (1960 ई.)
5. अमृत और विष (1960 ई.)
6. सात घूँघट वाला मुखड़ा (1968 ई.)
7. एकदा नैमिषारण्ये (1972 ई.)
8. मानस का हंस (1973 ई.)
9. नाच्यौ बहुत गोपाल (1978 ई.)
10. खंजन नयन (1981 ई.)
11. विखरे तिनके (1982 ई.)
12. अग्निगर्भा (1983 ई.)
13. करवट (1985 ई.)
14. पीढ़ियाँ (1990 ई.)

कहानी संग्रह

15. वाटिका (1935 ई.)
16. अवशेष (1938 ई.)
17. तुलाराम शास्त्री (1941 ई.)
18. आदमी नहीं! नहीं! (1947 ई.)
19. पाँचवाँ दस्ता (1948 ई.)

20. एक दिल हजार अफ़साने (1955 ई.)

21. ऐटम बम (1955 ई.)

22. पीपल की परी (1963 ई.)

23. कालदंड की चोरी (1963 ई.)

24. भरतपुत्र नौरंगीलाल (1970 ई.)

25. कौड़ी के तीन (1982 ई.)

26. सिकंदर हार गया (1984 ई.)

27. एक दिल हज़ार अफ़साने (1986 ई.) उनकी सभी कहानियाँ का संकलन

नाट्य साहित्य

28. परित्याग (1954 ई.)

29. युगावतार (1956 ई.)

30. नुक्कड़ पर (1963 ई.) में लिखा गया 1981 ई. में प्रकाशित हुआ।

31. बाल की बात (1974 ई.)

32. चन्दन वन (1976 ई.)

33. चक्करदार सीढ़ियाँ और अंधेरा (1978 ई.)

34. उतार-चढ़ाव (1978 ई.)

35. चढ़त न दूजो रंग (1982 ई.)

ये चार रेडियो नाटक हैं। इनका पुस्तक रूप में प्रकाशन हुआ।

यह नाटक दूरदर्शन के लिए लिखा गया

इसके अलावा उन्होंने प्रेमचन्द के 'गोदान' और 'ईदगाह' का नाट्य रूपांतरण और प्रसाद के 'स्कंदगुप्त' का मंचन प्रस्तुत किया।

संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध आदि

36. गदर के फूल (1957 ई.)

37. ये कोठेवालियाँ (1960 ई.)

38. जिनके साथ जिया (साहित्यकारों के संस्मरण 1973 ई.)

39. चैतन्य महाप्रभु (जीवनी, 1978 ई.)

40. टुकड़े टुकड़े दास्तान (आत्मकथा, 1986 ई.)

41. साहित्य और संस्कृति (1986 ई.)

हास्य व्यंग्य

42. नवाबी मसनद (1939 ई.)

43. सेठ बांकेमल (1955 ई.)

44. कृपया दायें चलिए (1972 ई.)

45. हम फिदाए लखनऊ (1973 ई.)

46. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (1985 ई.)

47. चकल्लस (समस्त स्फुट व्यंग्य-रचनाओं का संग्रह 1986 ई.)

बाल साहित्य

48. नटखट चाची (1946 ई.)

49. निंदिया आ जा (1950 ई.)

50. बजरंगी पहलवान (1969 ई.)

51. बजरंगी नौरंगी (1969 ई.)

52. इतिहास के झरोखे (1970 ई.)

53. बाल महाभारत (1971 ई., छः खंडों में)

54. हमारे युगनिर्माता (1982 ई.)

55. छः युगपुरुष (1982 ई.)

56. बजरंगी स्मगलरों के फंदे में (1972 ई.)

57. अकल बड़ी या भैंस (1982 ई.)

58. आओ बच्चों नाटक लिखें (1986 ई.)

59. सतखंडी हवेली का मालिक (1991 ई.)

अनूदित साहित्य

60. प्रेम की प्यास (मादाम कावेरी का संक्षिप्त भावनुवाद, 1937 ई.)

61. बिसाती (मोपासां की कहानियाँ, 1938 ई.)

62. काला पुरोहित (चेख़ोव की कहानियाँ, 1939 ई.)

63. आँखों देखा गदर (विष्णुभट्ट गोड्से की मराठी पुस्तक 'माझा प्रवास' का

अनुवाद, 1955 ई.)

64. दो फक्कड़ (क. म. मुंशी के तीन गुजराती नाटकों के अनुवाद, 1955 ई.)

65. सारस्वत (मामा वररकर के मराठी नाटक का अनुवाद, 1956 ई.)

पत्र-पत्रिकाएँ

66. अल्लाह दे (20 नवम्बर 1937 ई. से 3 जनवरी, 1938 ई.), मासिक

67. चकल्लस (7 फरवरी 1938 ई. से अक्टूबर 1938 ई.) साप्ताहिक
(इसमें अधिकांशतः नागर की ही रचनाएँ विविध नामों से छपती थीं। इसीलिए यह उनके रचना-संसार का एक अंग है।)

इस प्रकार अमृतलाल नागर ने साहित्य जगत को एक विपुल रचना संसार दिया जिसमें वैविध्य और रोचकता दोनों हैं। साहित्य की उन्होंने चिरस्मरणीय सेवा की है।

अमृतलाल को मिलने वाले सम्मान और पुरस्कार

1. 1961 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा में 'बूँद और समुद्र' पर पुरस्कृत किया।
2. 'बूद और समुद्र पर ही बुटुक प्रसाद पुरस्कार और सुधाकर पदक।
3. 'सुहता के नुपूर' पर प्रेमचंद पुरस्कार (1962-63 का) उतर प्रदेश शासन द्वारा दिया गया।
4. 1967 में 'अमृत और विष' पर साहित्य अकादमी।
5. 1970 में 'अमृत और विष' पर सोवयित लैंड पुरस्कार।
6. 1970-71 में उतर प्रदेश संगीत नाटक ने हिन्दी रंगमंच की विशिष्ट सेवा के लिए पुरस्कार
7. 1973-74 का राज्य साहित्य पुरस्कार 'मानस का हंस' पर
8. 1977 में आकाशवाणी के स्वर्ण-जयंती के अवसर पर भारत सरकार का विशेष सम्मान।
9. 1978 में 'मानस का हंस' पर रामकृष्ण हरजीमल पुरस्कार
10. 1979-80 में उ. प्र. हिन्दी संस्थान का 21 हजार का विशिष्ट पुरस्कार

11. 1981 में 'पद्यभूषण' से अलंकृत।

12. 1972 में 'साहित्य वारिधि' की उपाधि।

13. 1984 में 'भारतीय भाषा परिषद्' कलकता ने 'खंजन-नयन' पर विशिष्ट पुरस्कार।

14. 1988 में उ. प्र. हिन्दी संस्थान ने 'भारत-भारती' पुरस्कार' दिया।

15. 1988 में बिहार राजभाषा विभाग द्वारा 'डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान' – उनकी विशिष्ट साहित्यक सेवाओं के लिए।

16. 1988 में 'भारतीय भाषा परिषद्' कलकता से नथमल भुवालका सम्मान

17. वीरसिंह देव पुरस्कार

18. विद्या वारिधि

19. सुधाकर पदक

* रचना संबंधी जानकारियों– 'टुकड़े टुकड़े दास्तान', 'अमृतलाल नागर'– साहित्य अकादमी, सारिका 85, अमृतलाल नागर रचनावली

* पुरस्कार संबंधी जानकारियाँ – सारिका–85, 'अमृतलाल नागर'–सा॰ अकादमी

संदर्भ

[1] अमृतलाल नागर, 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान', पृ.सं.41

[2] वही, पृ. 44

[3] ठाकुर प्रसाद सिंह; 'बराबर अकेले पड़ते जाने की स्थिति', सारिका (सं.–अवधनारायण मुद्गल), 16-31 अगस्त 1985, में प्रकाशित, पृ.31

[4] अमृतलाल नागर, 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान', पृ. 50

[5] श्रीलाल शुक्ल; 'अमृतलाल नागर, साहित्य अकादमी', पृ. 4

[6] वही, पृ.7

[7] अमृतलाल नागर, 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' – पृ.57

[8] वही, पृ.13

[9] वही, पृ.67

[10] कन्हैयालाल नंदन; 'अमृतलाल नागर के साथ कन्हैयालाल नंदन की अंतरंग बातचीत', सारिका (सं. –अवधनारायण मुद्गल), 16-31 अगस्त 1985, में प्रकाशित, पृ.69

[11] वही, पृ.69

[12] केशवचंद्र वर्मा, 'वे जितने दिन जियेंगे...', सारिका (संपा.– अवधनारायण मुद्गल) 16-31 अगस्त, 1985, में प्रकाशित, पृ.67

[13] अमृतलाल नागर, 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान', पृ.54

[14] रामअवध शास्त्री; 'कथा ने ही कथाकार बनाया', आजकल (सं.–सुरेश चन्द्र शर्मा), मई 1990, में प्रकाशित, पृ.10

[15] देवेन्द्र चौबे, 'नागर जी के नगर में', आजकल (सं.–सुरेश चन्द्र शर्मा), मई 1990 में प्रकाशित, पृ.30

[16] वीरेन्द्र शर्मा, 'नागरजी के विदेशी अनुरागी अध्येता', आजकल (सं.– सुरेश चन्द्र शर्मा), मई 1990, में प्रकाशित, पृ.40

[17] अमृतलाल नागर, 'अमृतलाल नागर रचनावली खण्ड-7', (सं.–शरद नागर) पृ.6

[18] आनन्द नारायण शर्मा, 'कथा-सरोवर का हस उड़ गया', आजकल (सं.– सुरेश चन्द्र शर्मा), मई 1990 में प्रकाशित, पृ.13

[19] श्रीलाल शुक्ल, 'अमृतलाल नागर', पृ.66

[20] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल', पृ.216

[21] श्रीलाल शुक्ल, 'अमृतलाल नागर', पृ.3

दूसरा अध्याय

'गदर के फूल' का कथ्य

(i) 1857 की क्रांति में अवध

(ii) अवध के प्रमुख क्षेत्र और गदर में उनकी भूमिका

(iii) क्रांतिकारियों का स्वार्थ और राष्ट्रीय लक्ष्य

(iv) देशभक्ति और राजभक्ति

1857 की क्रांति में अमृतलाल नागर की रुचि बचपन से ही थी। अपनी इस रुचि को उन्होंने मेहनत और प्रतिभा से एक आकार प्रदान किया। 'गदर के फूल' का प्रकाशन 1957 ई. में गदर के शताब्दी वर्ष पर हुआ था। 1857 की क्रांति पर बहुत कुछ वर्तमान में भी लिखा जा रहा है। पत्रिकाओं के कई विशेषांक और कई स्वतंत्र पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। ऐसे समय में पुराने साहित्य पर ध्यान जाना स्वाभाविक है।

नागर ने 'गदर के फूल' में जिस प्रकार साहित्य और इतिहास का सामंजस्य बैठाया है वह अपूर्व है। नागर ने 'गदर के फूल' में लोकप्रचलित किस्सों के माध्यम से उस समय की परिस्थितियों और जनता की सोच जानने की कोशिश की है। 'गदर के फूल' में लोकप्रचलित किस्सों के माध्यम से उस समय की परिस्थितियों और जनता की सोच जानने की कोशिश की है। 'गदर के फूल' में उनकी एक पंक्ति है–"...इसमें सन्देह नहीं कि ये किस्से उन हलचल-भरे दिनों के जनजीवन की एक झाँकी प्रस्तुत कर देते हैं।"[1]

'उद्‌भावना' पत्रिका के एक लेख '1857 : वैकल्पिक स्रोतों की आवश्यकता में पंकज राग ने यह माना है कि लोकसाहित्य से व्यक्ति विशेष की अपेक्षा पूरे समुदाय की भावना मुखरित होती है। इस दृष्टि से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि वीरों की प्रशंसा करते हुए आम जनता देश के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करती है। इस तरह लोक में प्रचलित किस्से से जनता के मनोभावों का भी पता चलता है।

अमृतलाल नागर यह चाहते थे कि 1857 की क्रांति के वास्तविक नायकों का पता लगाया जाए। इसीलिए उन्होंने गदर के उन्नायकों की खोज का काम शुरू किया। उनका मानना था कि कोरी व्यक्ति पूजा गलत है। कई ऐसे लोग है जो वास्तव में देश के हित के लिए लड़े लेकिन वे गुमनामी के अंधेरों में गुम हैं। साथ ही साथ कईयों को बेवज़ह महत्त्व दिया गया है। इसीलिए सच्चाई का पता लगाना आवश्यक है। उन्होंने लिखा भी है–

> "गदर के नायकों में अनेक ऐसे हैं जो मुझे नकली लगते हैं और जिनका ढिंढोरा पीटना अब बंद हो जाना चाहिए। और बहुत से ऐसे नायक हैं जो अब तक छिपे पड़े हैं या दुर्भाग्यवश गलत मूल्यांकन के शिकार हो गए हैं। मैं केवल राजा-रजवाड़ों में ही नहीं, बल्कि जन-साधारण के उन

शहीदों को भी पहचानना चाहता हूँ जो हमारी प्रणामांजलि प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी है।"[2]

अमृतलाल नागर की प्रत्येक रचना के पीछे एक लंबा शोध कार्य रहता है। 'गदर के फूल' लिखने के लिए उन्होंने अवध क्षेत्र में घूम-घूम कर साक्ष्य एकत्र किया। नागर ने किस दृष्टि से 'गदर के फूल' लिखा है इस पर ध्यान देना आवश्यक है। साथ ही 1857 पर लिखे गये इतिहास के यह कितना अलग है यह भी जानना आवश्यक है। इतिहास में तथ्यों के निरूपण का महत्त्व होता है जबकि साहित्य मानवीय संवेदना को जगाने का काम करता है। जिस प्रकार ऐतिहासिक परिदृश्य को उपस्थित करने में साहित्य, इतिहास से आधार ग्रहण करता है, उसी प्रकार इतिहास भी कभी-कभी साहित्यिक रचनाओं से आधार निर्मिति में मदद लेता है। कभी-कभी इतिहासकार लोकोक्तियों, मुहावरों और कहावतों से भी साक्ष्य लेता है। नागर ने लोक में बिखरे इतिहास को समेटने का प्रयास किया है। देखना यह है कि उन बिखरी सामग्रियों के बीच से नागर ने जो तथ्य खोज निकाले हैं उनका ऐतिहासिक साक्ष्यों से कितना साम्य है। इस संबंध में अवध का गज़ेटियर ध्यान में रखना आवश्यक है। वस्तुतः तथ्य लगभग वही होते हैं, उन्हें देखने के नज़रिए और विचारधारा से अलग-अलग बातें सामने आती हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'गदर के फूल' इतिहास ने होकर एक साहित्यक कृति है। इसीलिए उसमें केवल ऐतिहासिक घटनाओं का प्रस्तुतीकरण नहीं है वरन् कल्पना का भी प्रयोग किया गया है। नागर ने लोगों से मिलकर उस समय की घटनाओं को जाना और साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने क्रांति के नायकों के संबंध में प्रचलित किंवदन्तियों के बीच से तथ्य निकालने की कोशिश की है। उनका मानना है कि इतिहास में लिखित साक्ष्य को ही एकमात्र प्रमाण मानना उचित नहीं है। बहुत-सा सच किंवदन्तियों में भी छुपा होता है।

अमृतलाल नागर ने अपनी कृति का नाम 'गदर के फूल' रखा है, 'गदर के काँटे' नहीं। इस शीर्षक के संबंध में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि इस क्रांति का कोई नकरात्मक पक्ष नहीं था या फिर नागर ने उसकी अपेक्षा की है? साहित्य में मूल्य का बहुत अधिक महत्त्व होता है। साहित्य तथ्यों का उल्था मात्र नहीं हो सकता है। इसी कारण नागर ने 1857 की क्रांति में समाज के विकास में सहायक

मूल्यों की तलाश की है। उन्होंने कहा भी है कि वे सत्तावनी-क्रांति के सार तत्त्व को जानने की कोशिश कर रहे हैं। नागर ने 1857 की क्रांति के सभी आयामों पर विचार किया है। उन्होंने इस क्रांति के नायकों के कार्यों से प्रेरक-तत्त्व निकालने की कोशिश की है। उदाहरण के लिए नागर ने हज़रत महल के बारे में लिखा है कि हरम में रह कर भी उन्होंने जिस प्रकार अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया, वह अनुकरणीय है। बेगम अंत में नेपाल भाग गई थीं। नागर का मानना है कि उनकी वीरता के समक्ष इस बात को भुला देना चाहिए। नागर का कहना है कि इतनी वीरता के साथ लड़ने के बाद अगर अंत में पारिवारिक सदस्यों की सुरक्षा का मोह जाग उठता है तो बहुत अस्वभाविक नहीं है। मानवीय प्रवृत्ति होती है कि हम किसी भी व्यक्ति की कमज़ोरियों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। इसीलिए हम 1857 की क्रांति के नायकों की कमियाँ ढूँढते हैं और उनकी खूबियों को नज़रअन्दाज़ कर जाते हैं।

अमृतलाल नागर ने इस बात का ध्यान दिलाया है कि व्यक्ति पूर्ण नहीं हो सकता है। उसमें विकास की संभावनाएँ हमेशा बनी रहती है। इसीलिए उन्होंने 'गदर के फूल' में क्रांतिकारियों के सबल पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया है। उन्हें विश्वास है कि इससे उन नायकों के प्रति जनता की सोच में परिवर्तन होगा। नागर का मानना है कि 1857 की क्रांति असफल रही लेकिन उसमें कई प्रेरणादायक तत्त्व मौजूद होंगे। हर असफलता के बाद हम सफलता के और करीब पहुँचते जाते हैं। इसीलिए नागर ने 1857 की क्रांति से प्रेरणादायी तत्त्वों को खोजने का प्रयास किया है।

'गदर के फूल' में नागर ने अवध को केन्द्र बनाया है। इस अध्याय में मैंने 1857 की क्रांति में अवध की भूमिका और क्रांतिकारियों के मंतव्यों पर विचार किया है। नागर का मानना है कि 1857 की क्रांति पर भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास का अभाव है। इसीलिए नागर ने लिखित साक्ष्य के अलावा वाचिक परम्परा का भी उपयोग करना जरूरी समझा था। नागर का मानना है कि 1857 की क्रांति हमारे जीवन से जुड़ी हुई है। इसीलिए इसके संबंध में प्रचलित कहानियाँ कोरी कल्पना नहीं हो सकतीं। उन्होंने उस समय के लोगों या अन्य बुजुर्गों से गदर के किस्से सुने और उस समय की परिस्थिति का आकलन करने की कोशिश की है।

अमृतलाल नागर ने 1857 की क्रांति पर भारतीय दृष्टिकोण के इतिहास की कमी को साहित्य से पूरा करने का प्रयास किया है। इस संबंध में उन तर्कों पर भी ध्यान देना आवश्यक है, जिसके आधार पर अंग्रेजपरस्त इतिहासकारों ने अंग्रेजों को हमारा मसीहा सिद्ध करने का पूरा प्रयास किया हैं पी.सी.जोशी और सुकुमार सेन का मानना है कि 1857 का विद्रोह होना आवश्यक था उसी तरह उसमें भारतीयों की पराजय भी अनिवार्य थी। कुछ इतिहाकारों का तो यहाँ तक मानना है कि भारत के औद्योगिक विकास में देशी रियासतें और सामन्ती व्यवस्था बाधक थी। ब्रिटिश शाासन ने भारत को औद्योगिक, आर्थिक, सामाजिक, सामयिक हर रूप में समृद्ध किया है। इसीलिए उन्होंने 1857 की क्रांति को सत्ता से विद्रोह के रूप में देखा है। नागर ने 'गदर के फूल' लिखकर 1857 को क्रांति सिद्ध किया और उसकी स्वस्थ छवि जनमानस में बनाने का प्रयास किया।

'क्रांति' के लिए नागर ने 'गदर' शब्द का प्रयोग किया है। इस विषय में उन्होंने 'गदर के फूल' में लिखा है–

> "विचार आता है कि 'कॉपी' की तरह ही हमारी बोल-चाल की भाषा में 'गदर' शब्द भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व पा चुका है। बोलचाल की भाषा के इस शब्द का अर्थ केवल सिपाही विद्रोह तक ही सीमित नहीं रह गया। 'गदर' मचना या 'गदर' पड़ना हमारी बोलचाल के मुहावरे में है, जिसका अर्थ भारी उथल-पुथल मचना है। मेरे स्कूल मास्टर की तरह ही शुद्धता के समर्थकों को 'गदर' शब्द सत्तावनी क्रांति के लिए हल्का और अपमानजनक प्रतीत होता है। ऐसे विद्वानों की भावना का हृदय से आदर करते हुए भी मैं अब सत्तावनी क्रांति को गदर नाम से पुकारने में नहीं झिझकूँगा।"[3]

नागर ने 1857 की क्रांति में सिपाहियों के साथ आम जनता और सामन्तो की भागीदारी को स्वीकार किया है। उन्होंने 1857 की क्रांति को जनविद्रोह (जनक्रांति) माना है लेकिन उनके विचार रामविलास शर्मा से भिन्न है। रामविलास शर्मा ने 1857 की क्रांति को जनक्रांति कहकर फ्रांस की क्रांति से इसकी तुलना की है। उनका मानना है कि फ्रांस की क्रांति की तरह ही 1857 की क्रांति भी सामंत विरोधी थी। रामविलास शर्मा ने लिखा है–"1857 की राज्यक्रांति संसार की पहली क्रांति है जो साम्राज्य विरोधी के साथ सामंत विरोधी भी है।"[4]

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में लिखा है–

> "..औरों को क्या कहूँ, स्वयं मेरी ही यह धारणा थी कि गदर में भाग लेने वाले सामन्त अपने-अपने स्वार्थ के लिए लड़े, इनका कोई संगठन नहीं था। परंतु अवध के इन छोटे-बड़े सामन्तों और बिहार के बाबू कुंवर सिंह और अमर सिंह के संगठन को देखकर मेरी पूर्व धारणा गलत सिद्ध हो जाती है। महारानी लक्ष्मीबाई के शौर्य और बेगम हज़रत महल की कार्यकुशलता तथा संगठन शक्ति देखकर राष्ट्र के स्वाभिमान में क्या हमारी आस्था नहीं जमती? मौलवी अहमदुल्ला शाह और तात्या टोपे का हर जगह लड़वैयों का हुजूम बटोर लेना क्या सत्तावनी क्रांति को जनक्रांति सिद्ध नहीं करता।"[5]

नागर ने इस बात पर अफसोस जताया है कि हमारे इतिहासकारों ने तथ्यों की गहरी छानबीन नहीं की है। इतिहासकारों ने सतही तौर पर तथ्यों को देखकर फ़तवा जारी कर दिया कि 1857 की क्रांति जनक्रांति नहीं है। इस प्रकार अमृतलाल नागर ने सत्तावनी क्रांति को जनक्रांति माना है और 'जन' को विस्तार देते हुए आम जनता के साथ सामंतों तक को सम्मिलित किया है।

नागर ने 1857 की क्रांति के सकारात्मक पक्षों पर ध्यान देते हुए ख़ुद को अतिवाद से बचाया है। उन्होंने इस क्रांति के संबंध में संतुलित विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'गदर के फूल' की निम्नलिखित पंक्तियों में नागर ने विचारों का पता चलता है–

> "...मैं राष्ट्र की कमज़ोरियों पर पर्दा डालने के पक्ष में नहीं हूँ, गदर के गौरव को लेकर अपने को बहलाना या धोखा देना भी नहीं चाहता, परंतु दोषों पर चौदह आना वजन, गुणों की ओर से आँखें मींचकर अपने जन को दिग्भ्रमित, हतोत्साहित और कुण्ठित नहीं करना चाहता।"[6]

इस वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि नागर 1857 की क्रांति के अंधभक्त नहीं थे किन्तु उसके प्रति श्रद्धा अवश्य रखते थे। 1857 की क्रांति की 150 वीं जयन्ती के अवसर पर उसे पुनः संपूर्णता में देखें जाने की आवश्यकता है। इस कार्य में 'गदर के फूल' के अध्ययन का विशेष महत्त्व है। यद्यपि इसमें केवल अवध के क्षेत्र का अंकन किया गया है तथापि उसके द्वारा देश के बाकी हिस्सों की परिस्थितियों का आकलन किया जा सकता है।

यहाँ 1857 की क्रांति की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाया जा सकता है। वर्तमान समय में भारत के अधिकांश नेता भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, फिर भी चुनाव

लड़ते हैं और जीत भी जाते हैं। इसका सीधा कारण है कि जनता के पास विकल्प नहीं है। इसीलिए 'वह योग्यतम के चुनाव' की नीति के आधार पर नेता का चयन करती है। इस चुनाव के लिए जनता इस बात का मुआयना करती है कि इस स्वार्थ सिद्धि के क्रम में ही किस नेता ने देशहित में निर्णय लिए हैं। उसी तरह 1857 की क्रांति के नायकों में भी हम देशहित में किए गये कार्यों की तलाश कर सकते हें। 1857 की प्रासंगिकता के संबंध में भारत की जनता की आत्मत्याग की भावना, हिन्दू मुस्लिम एकता और क्रांति में महिलाओं, दलितों और आदिवासियों की भूमिका को लिया जा सकता है, जिसकी आज भी आवश्यकता है। इस प्रकार वर्तमान से तुलना करने पर 1857 की क्राति की प्रासंगिकता स्पष्ट हो जाती है।

1857 की क्रांति के कारण और उसकी असफलता के कारणों पर भी संक्षिप्त विचार प्रस्तुत करना आवश्यक है। मेरे विचार से 1857 की क्रांति असन्तोष का परिणाम थी। सिपाही, किसान और सामंत सभी असंतुष्ट थे। हाँ, उनके असन्तोष का कारण अलग-अलग था। सामंतों की पेंशन रूकने और उत्तराधिकार की समस्या उनके असन्तोष का कारण बनी थी। भारतीय सिपाहियों की पगार अंग्रेज विपाहियों से कम थी। साथ ही वे अधिकतम सूबेदार बनाए जाते थे। इन दोनों कारणों से सिपाहियों में असन्तोष पनप रहा था। तात्कालिक कारणों के रूप में कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी का प्रयोग और उनका दांतों से काँटा जाना था। हालाँकि सिपाहियों ने बाद में उन्हीं कारतूसों का प्रयोग, अंग्रेजों के विरूद्ध किया था। किसानों में असन्तोष का कारण भू-राजस्व का रुपये के रूप में वसूला जाना था। महालबाड़ी व्यवस्था लागू होने के बाद फसल का सारा नुकसान केवल किसानों को भरना पड़ता था। इस प्रकार असन्तोष सबके अंदर घर कर गया था। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि अगर अंग्रेज सरकार ठीक से काम करती तो क्या विद्रोह नहीं होता? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि तब इस क्रांति के लिए किसी सबल नेता की आवश्यकता होती जो जनता में स्वातंत्र्य चेतना जगाने में सफल होता।

1857 की क्राति असफल रही इस असफलता का प्रमुख कारण हम योजना का अभाव मान सकते हैं। विद्रोह के लिए 31 मई 1857 का दिन तय था लेकिन 10 मई, 1857 के दिन ही मेरठ में विद्रोह प्रारंभ हो गया। इसके कारण हर जगह

तैयारी पूरी नहीं हो पायी थी। अगर तिथि बदलती ही थी तो योजना में परिवर्तन की बात हर जगह पहुँचायी जानी थी। सूचना के अभाव में क्रांति की व्यापकता संदेह के घेरे में आ गयी थी। समय से पूर्व विद्रोह होने के संबंध में सुन्दरलाल ने मालेसन, विलसन व्हाइट जैसे अंग्रेज विश्लेषज्ञों की सम्मति का उल्लेख किया है कि "यदि पूर्व निश्चय के अनुसार 31 मई, 1857 को सब स्थानों पर एक साथ युद्ध शुरू हुआ होता, तो अंग्रेज शासकों के लिए भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असंभव होता।"[7]

समय से पूर्व क्रांति की शुरूआत होने के दुष्परिणाम को इस प्रकार समझा जा सकता है कि खाना अगर पूरी तरह पका न हो तो उसे खाने से शरीर को पौष्टिक तत्त्व नहीं मिल पाते। ठीक उसी प्रकार भावनाएँ पोषित होने पर ही अपना प्रभाव दिखाती है। किसी भी क्रांति के सफल होने में संख्या की महती भूमिका होती है। इसीलिए ज्यादा से ज्यादा लोगों को क्रांति में सम्मिलित करने के लिए नियत समय और संगठन की नितान्त आवश्यकता थी।

सुन्दरलाल ने 1857 की क्रांति की असफलता का कारण बताते हुए रसल के कथन का उल्लेख किया है–

> "फिर भी हमें स्वीकार करना पड़ता है कि अंगरेज़ चाहे कितने भी बहादुर क्यों न हो, यदि सब-के-सब भारतवासी पूरी तरह हमारे विरूद्ध हो जाते हैं तो भारत में कहीं अंगरेज़ों का निशान तक बाकी नहीं रह जाता।"[8]

इसके साथ ही सुन्दरलाल ने क्रांति की असफलता के कारणों में सिखों और गोरखों का साथ देना भी माना है। सिखों के बिना दिल्ली और गोरखों के बिना लखनऊ में भारतीयों की पराजय असंभव थी। उन्होंने यह भी माना है कि हमारे पास योग्य नेतृत्व का अभाव था। नेतृत्व के बारे में रामविलास शर्मा का मानना है कि मौलवी साहब, बख्त खाँ, कुँवर सिंह, नाना साहब, तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई बेगम हज़रत महल, अजीमुल्ला जैसे नायकों की तरह का प्रभावशाली व्यक्तित्व अंग्रेजों के पास नहीं था। अगर रामविलास शर्मा की बात से सहमत हो भी जाएँ तो इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन नेताओं का नेतृत्व देशव्यापी स्तर का नहीं था।

इसीलिए इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय सेना में संगठन और प्रशिक्षण का अभाव था। इस प्रकार भारत की पराजय उसकी अव्यवस्था क कारण तय ही थी। लड़ाई केवल भावना से नहीं लड़ी जाती। भावना के साथ संगठन और कार्यप्रणाली में एक विशेष व्यवस्था की आवश्यकता होती है, जिसकी भारतीय सेना में नितान्त कमी थी। हाँ, इतना अवश्य है कि 1857 की क्रांति ने भारतीयों की चेतना को जगाने का बड़ा काम किया। साथ ही भारतवासियों के अंदर राष्ट्रीय जीवन में आशा और विश्वास भर गया। इसी भावना के कारण 1947 ई. में भारत स्वतंत्र हुआ।

(i) 1857 की क्रांति में अवध

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' की रचना 1857 की क्रांति को केन्द्र में रखकर की है। 1857 की क्रांति में अवध का बहुत महत्त्व है। नागर का यह मानना है कि अवध की परिस्थितियों और क्रांति में इसकी भूमिका देखकर भारत के अन्य क्षेत्रों की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। अवध के बारे में कहा जाता है कि वहाँ केवल दस दिन के अंदर अंग्रेजी शासन स्वप्न की तरह विलुप्त हो गया और अपने पीछे एक भी चिह्न नहीं छोड़ गया। चार्ल्स बॉल ने लिखा है–

> "अवध में अभियान पर निकले सैनिक बिना दसद के चलते हैं; क्योंकि लोग, हमेशा उन्हें भोजन कराते हैं। बिना पहरेदारों के वे अपना सामान छोड़कर चले जाते थे, कोई उसे लूटता नहीं था। उन्हें अपने तथा अंग्रेजों के मुकाम की ख़बर हमेशा रहती थी क्योंकि इसकी सूचना हर घंटे उन तक पहुँचायी जाती थी।"[9]

यहाँ दो बातें ध्यातव्य है– पहली, गाँव वालों द्वारा भोजन कराने को हम भले भारतीय संस्कृति और परम्परा से जोड़ दें लेकिन अंग्रेजों की सूचना सिपाहियों को देना, यह तो क्रांति में उनके सहयोग को दर्शाता है।

दूसरी, अगर सिपाहियों का सूचना तंत्र इतना अधिक मजबूत था तो फिर उन्होंने अपने सैनिक बल का सुदृढ़ क्यों नहीं किया? अगर जान-बूझ कर इतनी लापरवाही की जाए तो फिर विजय की संभावना कहाँ रह जाती?

सिपाहियों की काफी बड़ी संख्या (लगभग 4000) अवध क्षेत्र से भर्ती की गयी थी। उस क्षेत्र में आज की फैजाबाद और लखनऊ की कमिश्नरियाँ शामिल हैं।

सिपाहियों के इस क्षेत्रीय संबंध को ध्यान में रखना काफी महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए कि यह वही क्षेत्र है, जहाँ 1857 के विद्रोह की आग सबसे तेज़ थी।

अवध में विद्रोह होने की परिस्थितियों की पड़ताल करनी आवश्यक है। अवध में स्थिति बदल रही थी। 1856 में इस इलाके को ब्रिटिश राज में मिला लिया गया। उसके पहले जब भी सिपाही नवाबी सरकार और उसके अधिकारियों के खिलाफ शिकायत करता तो जोतदार के रूप में सिपाही को ब्रिटिश रेज़िमेंट की तरफ से संरक्षण मिलता था। इस क्षेत्र के ब्रिटिश राज में मिला लिए जाने के बाद यह सुविधा समाप्त हो गयी। अंग्रेजों द्वारा लागू की गयी महालबाड़ी का अवध तक विस्तार होने के बाद किसानों को अपनी आमदनी और ज़मीन से हाथ धोने की संभावना थी। इसीलिए अब जनता को वाज़िदअलीशाह का सत्ता के बेदखल किया जाना अखरने लगा।

1861 में अवध के विषय में भारत सचिव चार्ल्स वुड ने हॉउस ऑफ कामन्स में कहा था–

> "उस समय के परिणाम स्वरूप (यानी महालबाड़ी व्यवस्था की पूर्णता के विषय में) नए हथियार गए अवध के इलाके में इसको लागू किया गया। हमने कल्पना की थी कि हम आम जनता को फायदा पहुँचा रहे हैं और उनका ताल्लुकेदारों से दामन बचा रहे हैं लेकिन अवध के विद्रोह में हमारे खिलाफ रैयत (आमलोगों) ने भाग लिया और ताल्लुकेदारों के साथ सहयोग किया।"[10]

इस प्रकार चार्ल्स वुड के उपर्युक्त कथन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि अवध की जनता विचारशील थी। उन्हें महालबाड़ी व्यवस्था से होने वाली दुर्गति के बारे में पता था। उन्होंने यह अनुभव किया कि भले ताल्लुकेदार भी उनके प्रति सहृदय नहीं है किन्तु बुरे वक्त में कुछ मदद कर देते हैं। इसके विपरीत अंग्रेजों से मदद की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसीलिए आम जनता के ताल्लुकेदारों का साथ दिया।

महालबाड़ी व्यवस्था के अनुसार राजस्व वसूली नकद रूप में होती थी फसल के नुकसान होने की पूरी भरपाई किसानों को करनी पड़ती थी। ब्रिटिश सरकार अपने तय किये गये राजस्व में कोई कटौती नहीं करती थी और न हीं समय की मोहलत देती थी। इसके विपरीत ताल्लुकेदार अनाज के एक निश्चित भाग के रूप

में राजस्व लेते थे। इसीलिए यह राजस्व घटता-बढ़ता रहता था। फसल खराब होने या अनाज का भा गिरने का नुकसान किसान और ताल्लुकेदार मिल कर सहते थे। ताल्लुकेदार किसानों का कितना भी शोषण करें, वे स्वयं को ग्रामीण समाज का नेता मानते थे। इसीलिए अपनी शर्तों पर ही सही लेकिन विपत्ति के समय किसानों की मदद भी करते थे। इस कारण ग्रामीण समाज में उन्हें सम्मान भी मिलता था। अतः जनता ने क्रांति में ताल्लुकेदारों का साथ दिया।

अवध की जनता में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के ज़ज़्बे का पता निम्नलिखित पंक्तियों से चलता है, जिसमें कुछ रानियों ने जेलर के सवाल पर करारा जवाब दिया था। लखनऊ के पतन के बाद कुछ अंग्रेजों ने लखनऊ के जनानखाने पर हमला किया। वहाँ अंग्रेजों ने गोलियाँ चलाईं। कुछ स्त्रियाँ मारी गईं। जो बची उन्हें कैद कर लिया गया। लखनऊ को जला डाला गया। अंग्रेजों को विश्वास था कि इससे विद्रोही उनकी शरण में आ जाएगें। इस कल्पना से अंग्रेज बहुत खुश थे। इसी खुशी में अंग्रेज जेलर ने उन रानियों से पूछा–"विद्रोह पूरी तरह विफल हो गया है, ऐसा तुम्हें नहीं लगता?"

उस समय उन कृतनिश्चयी बेगमों ने स्पष्ट कहा–"इसे कुचलना तो बहुत दूर की बात है, अंततोगत्वा पराजय तुम्हारी ही होगी।"[11]

इतनी बड़ी हार के बाद भी यह आत्मविश्वास निश्चय ही उस क्रांतिकारी चेतना का सूचक था जिसे राष्ट्रीय बगावत ने जगाया था। इस वक्तव्य से ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह की भारतीय मानस पर गहरी छाप और विद्रोह की व्यापकता का पता चलता है। इस वक्तत्व से जिस आत्मविश्वास का पता चलता है वह केवल स्वार्थ से नहीं पनप सकता है। निश्चय ही देशवासियों के मन में राष्ट्रहित की भावना थी।

अवध के नायक अपने क्षेत्र के ब्रिटिश सरकार द्वारा अधिगृहीत किए जाने की स्थिति में अन्य क्षेत्रों की सेना में मिल जाते थे। लखनऊ पर अंग्रेजों के अधिकार के बाद अवध की वास्तविक स्थिति के बारे में रसेल ने लिखा है–

> "...अवध को अभी एक शत्रु देश समझना चाहिए क्योंकि अधिसंख्य ताल्लुकेदार ऐसे हैं जो अपने क्षेत्रों में मजबूती से स्थापित हैं और अवध घोषणा में दी गयी धमकियों की उपेक्षा कर रहे हैं। लखनऊ पर अधिकार के बाद विद्रोहियों के पूरे अवध क्षेत्र में फैल जाने से ताल्लुकेदार और

शक्तिशाली हो गये।... सरकारी तंत्र लगभग नष्ट हो गया है। पुलिस जैसे गायब हो गयी है और हमारा राजस्व विद्रोही वसूल कर रहे हैं।"[12]

रसेल के इस कथन से अवध के विद्रोह के स्वरूप का पता चलता है। अंग्रेजों ने सोचा था कि लखनऊ पर अधिकार के बाद विद्रोहियों का मनोबल टूट जायेगा। लेकिन इसके विपरीत विद्रोहियों ने सम्पूर्ण अवध को अपने मुक्तिसंग्राम का केन्द्र बना लिया। इसके बाद उनके आत्मबल से ब्रिटिश सरकार का मनोबल कमजोर पड़ने लगा।

अवध में विद्रोह की परिस्थितियाँ मुख्यतः निजी भूमि को सरकारी भूमि में मिलाए जाने के कारण उत्पन्न हो रही थीं। वर्तमान में हम स्वतंत्र हैं लेकिन अगर हमारी सरकार निज़ी भूमि या संपत्ति को अधिगृहीत कर ले तो हम उसको विरोध करेंगे। अंतिम दम तक हम न्यायालय का चक्कर लगाकर संघर्ष करते रहेंगे। 1857 मे यह भूमि अधिग्रहरण बहुत से क्षेत्रों मे हो रहा था। अवध में क्रांति का यह प्रमुख कारण बना। निश्चित रूप से यह भूमि अधिग्रहण हमारे अधिकारों का हनन है। इसी तरह सिपाहियों के बहुत से अधिकार छीने जा रहे थे। वेतन, पद आदि में तो भेदभाव होता ही था। साथ ही उन्हें जबरदस्ती ईसाई धर्म अपनाने कहा जाता था। इस तरह हर तरफ से विद्रोह की परिस्थितियाँ बन रही थीं।

1857 की क्रांति में जनता के विचार जानने के लिए एक सनातन सत्य को जानना आवश्यक है। आम जनता को देश चलाने या शासन व्यवस्था से कोई सरोकार नहीं होता है। उसे अपने काम और वेतन से मतलब होता है। यही सोच सभी युगों में काम करती है। आम जनता अपनी दैनंदिन की आवश्यकताओं को पूरा कर चैन से जीना चाहती है। आम जनता सरकार की नीतियों और कार्यव्यवस्था पर ध्यान रखती है जिससे कि वह आगे सही व्यक्ति को चुनकर सत्ता की बागडोर सौंप सके। सत्तासीन लोग जब केवल अपना हित साधन करते हैं और देशहित पर ध्यान नहीं देते तब जनता विद्रोह पर देती है।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गुलामी की स्थिति में भी जनता केवल अपने जीवन तक सीमित रहती है। हाँ, इतना अवश्य है कि उनमें स्वातंत्र्य चेतना जगाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए बुद्धिजीवी वर्ग को आगे आना आवश्यक है। यहाँ ज़मीनी सच्चाई की बात यह है कि अपनी शाख पर चोट हुए बिना

क्रियाशीलता नहीं आती है। हर वर्ग अपने हितसाधन का ध्यान पहले रखता है जिससे देशहित कहीं पीछे छूट जाता है। हमारे देश की संस्कृति में 'अतिथिदेवोभव' का बहुत स्थान रहा है। हमने हमेशा दूसरी संस्कृतियों की अच्छाईयों को आत्मसात करने की बात सोची है। लेकिन कहीं-न-कहीं इससे हमारी जड़े हिलती चली गईं। अंग्रेज यहाँ व्यापार करने आए, लेकिन धीरे-धीरे देश को उन्होंने पूरी तरह हथिया लिया। हम अपने ही देश में गुलाम बन गये। हमारी गुलामी शारीरिक से अधिक मानसिक थी।

भारतीय पूरी तरह अंग्रेजों की गिरफ्त में आ गये। इसीलिए उन्हें ब्रिटिश कार्यनीतियाँ अपने हित में नज़र आने लगीं। हमारा धन विदेश जाता रहा और हम इस गलतफ़हमी में रहे कि हमारे हितों का ध्यान रखा जा रहा है। अंग्रेज़ी शिक्षा हमें बौद्धिक गुलामी की ओर ले जा रही थी। आम जनता को नेतृत्व की आवश्यकता होती है। ऐसा नेतृत्व जो उन्हें बतालाये कि उनकी बदहाली का कारण गुलामी है।

विपिन चंद्र का मानना है कि–

> "यदि किसी ऐतिहासिक घटना का महत्व तात्कालिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं होता, तो 1857 का विद्रोह भी महज एक ऐतिहासिक ट्रेजेडी नहीं थी। अपनी विफलता में भी इसने एक उद्देश्य की पूर्ति की। यह उस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का प्रेरणा-स्रोत बन गया जिसने वह हासिल कर दिखाया, जो विद्रोह नहीं कर सका।"[13]

अर्थात् 1857 की क्रांति ने असफल होने पर भी भारतीयों की स्वातंत्र्य चेतना को जगाया जो 1947 ई. में फलीभूत हुआ।

1857 की क्रांति पर जस्टिन मैकार्थी का कथन ध्यातव्य है–

> "वस्तुस्थिति यह है कि भारतीय प्रायद्वीप के संपूर्ण उतरी एवं उतर-पश्चिमी प्रदेशों में ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध देशी जातियों ने विद्रोह कर दिया था। केवल सिपाहियों ने विद्रोह नहीं किया, इसे कोरी सैनिक क्रांति का नाम नहीं दिया जा सकता है। यह तो भारत पर आंग्ल सत्ता के विरूद्ध सैनिक कठिनाईयों, राष्ट्रीय घृणा और धार्मिक कट्टरता का संयुक्त उभार था।"[14]

1857 की क्रांति के समय भारतीयों ने दया, माया, ममता का परिचय देते हुए अंग्रेज अधिकारियों को शरण दी। अगर अंग्रेजों को भारतीयों से शरण न मिली होती तो उनका विनाश कठिन न होता। इस संबंध में सावरकर का मानना है कि अंग्रेजों के शरणदाता सरदार, ज़मीनदार और राजा अंग्रेजों द्वारा बहुत क्षति सह चुके थे, जिसे

वे भूले नहीं थे। उन्होंने अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से भगाने का संकल्प किया परंतु इस वीरोचित स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न के साथ ही वीरोचित उदारता दिखाने में उन्होंने कमी नहीं की।

भारत की कार्यनीति हमेशा उदारता पर आधारित रही थी। भारतीयों को यह समझ में नहीं आया कि हर जगह एक जैसी कार्यनीति लागू नहीं की जा सकती है। 1857 की क्रांति में सक्रिय भूमिका निभाने वाले अवध को भी यह बात बहुत देर से समझ में आयी। अवध के कई क्षेत्रों के अधिग्रहण के बाद यहाँ के लोगों को होश आया। फिर यहाँ के राजाओं सरदारों और ताल्लुकेदारों के स्वार्थ और राष्ट्रहित के बीच अपनी कार्यनीति बना कर क्रांति का नेतृत्व किया।

अवध में उपस्थित क्रांति के स्वरूप में कुछ अनुकरणीय तथ्य मौजूद थे। जैसे अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात की है। उन्होंने रामगढ़ी मंदिर के पुजारी रामचरण दास और मौलवी अमीर अली का उदाहरण दिया है। उन दोनों ने मिलकर क्रांति का नेतृत्व किया था। विजय के बाद अंग्रेजों ने उन्हें इमली के पेड़ से लटकाकर फाँसी दी थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अच्छन खाँ ने भी सराहनीय कदम उठाया था। अयोध्या की श्रीरामजन्मभूमि को लेकर विवाद होता रहा है कि वस्तुतः वह रामजन्मभूमि है या बाबरी मस्जिद का क्षेत्र है? 1857 की क्रांति के समय अच्छन खाँ ने यह भूमि हिन्दूओं को वापस देने का मुसलमानों से अनुरोध किया था। यह हिन्दू-मुस्लिम के बीच समझ की एक मिसाल ही है कि घोर संकट को देखकर, उन्होंने आपसी वैमनस्य को भूलकर अंग्रेजों का साथ मिलकर विरोध किया। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकता के सबंध में रामरचरण दास-मियाँ अमीर अली और अच्छन खाँ-शम्भू प्रसाद शुक्ल अनुकरणीय आदर्श है।

अच्छन खाँ के मित्र शम्भू प्रसाद शुक्ल अयोध्या के ही थे। दोनों दोस्तों ने विद्रोह के समय फैजाबाद के राजा देवीबख्श सिंह की सेना की कमान सँभालते हुए अंग्रेजों के दाँत खट्टे किए। जीत के बाद अंग्रेजों ने दोनों को पीड़ित करके मौत के घाट उतार दिया। अवध का नेतृत्व बेगम हज़रत महल ने किया। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को बहुत बढ़ावा दिया। बेगम ने विद्रोह के दौरान किसानों, पारसियाँ और गरीबों के हितों का ध्यान रखा। इसीलिए हर वर्ग उनके नेतृत्व में संघर्ष के लिए तैयार हो गया।

भारतीय समाज अंग्रेजी शासन से बुरी तरह त्रस्त हो चुका था। इसीलिए 1857 का विद्रोह किसी एक समुदाय, जाति या वर्ग का न होकर बहुवर्गीय और बहु सामुदायिक था। बहादुरशाह जफ़र ने इस एकता को बनाए दखने के लिए ईद-उल-जुहा (बकरीद) के अवसर पर 1857 में ऐलान किया था–"कुर्बानी के नाम पर किसी को गऊ वध की इजाज़त नहीं होगी और इस शाही फ़रमान की अवहेलना करने वाले को कड़ी से कड़ी सज़ा मिलेगी।"[15]

स्वयं बहादुरशाह ने मात्र एक भेड़ की बलि दी। हिन्दू-मुस्लिम एकता के संबंध में अपने लेख में रिज़वान कैसर ने यह निष्कर्ष दिया कि 1857 की क्रांति में हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों में किसी भी प्रकार का साम्प्रदायिक तनाव देखने को नहीं मिलता है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में आर.सी.मजूमदार का मत विपरीत है। उनका मानना है कि जिन प्रदेशों में विद्रोह बहुत ज्यादा फैला हुआ था वहाँ भी दोनों समुदायों में एकता नहीं थी। सेना के अधिकारियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को यह संदेश भेजा था कि संघर्ष की सफलता के लिए उनकी एकता आवश्यक है। लेकिन उनके अंदर साम्प्रदायिकता की जड़े इतनी मतबूत थी कि जिसे दूर कर पाना आसान नहीं था।

1857 की क्रांति में अवध की भूमिका को देखने में उसके नायकों पर भी विचार करना आवश्यक है। बेगम हज़रत महल, बेनीमाधव, देवी बख्श सिंह, तुलसीपुर की रानी राजेश्वरी देवी आदि को नागर ने बहुत महिमामण्डित किया है। उन्हें वे वास्तविक नायक मानते हैं। राणा बेनीमाधव ने पूरी वीरता के साथ क्रांति में भाग लिया था। छोटे शासकों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे स्वार्थ से अधिक देशहित और जनहित के लिए जीते हैं। जनता से उनका सीधा संपर्क भी रहता था। इसीलिए उनकी संवेदना जनता से जुड़ी रहती थी। आम-जनता के दुख में वे मददगार थे।

इन पक्षों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कम-से-कम अवध में क्रांति का स्वरूप स्वतंत्रता-संग्राम जैसा था। वहाँ की हिन्दू मुस्लिम एकता, सभी वर्गों का सामंजस्य, जनता की भागीदारी और महिलाओं का सक्रिय सहयोग आदि प्रेरणादायी है।

(ii) अवध के प्रमुख क्षेत्र और गदर में उनकी भूमिका

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में इस बात पर विचार किया है कि अवध के कौन-कौन से क्षेत्र 1857 की क्रांति में सक्रिय रहे। किसी भी राज्य के सभी जिलों और क्षेत्रों में क्रांति की चेतना एक समान नहीं हो सकती है। कुछ क्षेत्र क्रांति में पूरे तरह सक्रिय रहे होंगे तो कुछ क्षेत्रों में क्रांति की चेतना समान अनुपात में नहीं जागी होगी। नागर ने अवध की यात्रा कर क्रांति में सक्रिय लोगों का पता लगाया है। यह पूरी यात्रा नागर ने अकेले की थी। इसीलिए पूरा अवध उनके लिए घूम पाना संभव न हो सका था। कुछ क्षेत्र बिल्कुल अनछुए रह गए। इसीलिए यहाँ अवध के उन्हीं क्षेत्रों की क्रांति में भूमिका पर विचार किया गया हैं जिसका नागर ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है।

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में लिखा है–"अपनी सीमित शक्ति और सुविधा के लिहाज से ही मैं केवल लखनऊ और अवध तक सीमित हूँ।"[16]

इस पुस्तक में नागर ने कुल ग्यारह जिलों की बात की है जिसमें दस अवध के हैं और ग्यारहवां लखनऊ हैं। अवध के प्रमुख जिले बाराबंकी, जहाँगीरबाद, फैजाबाद, सुल्तानपुर, गोंडा, बहराइच, सीतापुर, रायबरेली, हरदोई और उन्नाव है। नागर ने इन जिलों में किसी प्रमुख घटना या स्वतंत्रता सेनानी से संबंधित क्षेत्रों को चुना है। किसी-किसी क्षेत्र से नागर को निराशा भी हाथ लगी जब वहाँ के लोगों ने युद्ध में अपने पूर्वजों की भूमिका से इनकार कर दिया। बाराबंकी जिले से उन्होंने दरियाबाद, भयारा, कुर्सी, सुल्तानपुर जिले से अमहट, बहराइच जिले से मितौली, मनवा का कोट, खैराबाद, नैमिषारण्य, मध्यान्तर; रायबरेली जिले से डलमऊ, भीरा गोविन्दपुर, शंकरपुर, परशुराम ठिकहाई, हरचन्द्रपुर और कठवारा, सेमरी और गढ़ी बहार, हरदाई जिले से सदामऊ (रोइया ग्राम), बेरूआ और उन्नाव जिले से डौंडिया खेड़ा का उल्लेख किया है।

अमृतलाल नागर की यात्रा का आरंभ बाराबंकी से हुआ। बाराबंकी में एक क्षेत्र चहलारी है। गदर के बाद से ही यह क्षेत्र बहराइच जिले का एक अंग बन गया है। इससे पहले वह सीतापुर जिले से जुड़ा हुआ था; बाराबंकी क्षेत्र से उसका कोई संबंध न था। चहलारी नरेश बलभद्रसिंह रैकवार ने 1857 की क्रांति में अद्भुत

शौर्य का प्रदर्शन किया था। बलभद्रसिंह अठारह वर्ष के नौजवान थे। समर में अनोखी वीरता दिखलाते हुए अवध की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने प्राण न्योछावर कर दिए थे। नागर ने जनता के मध्य जाकर बलभद्रसिंह और अंग्रेजों के बीच हुए युद्ध से संबंधित किंवदन्तियों में से सच का पता लगाने का प्रयास किया है। बाराबंकी पहले नवाबगंज कहलाता था। नवाबगंज के जिलाधिकारी लक्ष्मीसहाय गुप्त ने एक किंवदन्ती के हवाले से यह शंका जताई थी कि बलभद्रसिंह अंग्रेजों के मित्र थे। नागर ने सर होपग्राण्ट द्वारा लिखित पुस्तक 'सिपॉय वार' का उल्लेख किया है जिसमें नवाबगंज के रणबांकुरों से लड़ाई का वर्णन है। उनमें से एक बलभद्रसिंह थे। नागर ने अहमद किदवई उर्फ अच्छन साहब का नाम लिया है जिनका दावा था कि उनके मामू के पास चहलारी नरेश संबंधी प्राचीन आल्हा है।

बाराबंकी जिले की यात्रा में नागर ने पहले दिन दरियाबाद की यात्रा का प्रोग्राम बनाया। बाराबंकी से लगभग 18 मील दूर लखनऊ –फैजाबाद मार्ग पर दरियाबाद स्थित है। यहाँ बाबा रामसनेही का नाम 1857 की क्रांति में बहुत प्रसिद्ध था। उन्हें क्रांति का हीरो माना जाता था क्योंकि बहुत से फ़कीरों ने भी 1857 की क्रांति में हिस्सा लिया था। बाबा रामसनेही के परिवार वालों ने इस बात से इनकार किया कि बाबा ने गदर में हिस्सा लिया था। उन्होनें बस समाधि खुलने की किंवदन्ती का समर्थन किया था। इस प्रकार 'बाबा क्रांति के हीरो हैं' किंवदन्ती का खंडन हो गया।

नागर ने बड़ी खूबसूरती से गदर के पहले और बाद जनता की सोच में जाए अंतर को बतलाया है। नागर ने लिखा है–

> "जिस अवध के विद्रोही रूप को सन् सत्तावन के अंग्रेज लेखकों ने जन स्वातंत्र्य का प्रबल रूप माना है, वही अवध गदर के सात-आठ वर्षों के अंदर ही बड़ी तेजी से अंग्रेज़ी पढ़ने वाला बन गया।"[17]

इससे पता चलता है कि युग के अनुसार लोगों की मान्यताएँ बदलती है और वे नयी-नयी चीजों को अपनाने लग जाते हैं।

नागर का मानना है कि सत्तावनी क्रांति में दरअसल हमारी तरह-तरह की कमजोरियाँ ही हारीं। गदर के बाद धीरे-धीरे उन कमजोरियों को दूर करने की कोशिश की गई। नागर ने पता लगाया था कि दरियाबाद में एक गोरा बैरक या

गोरा बाग है। वही सिपाही विद्रोह का आरंभ हुआ था और बहुत से गोरे मारे गए थे। दरियाबाद के राय अभिराम बली, सिकरौरा के जमींदार अजब सिंह और उनके साथ अल्लाबख्श ये सभी सत्तावन के बीरों में थे। अल्लाहबख्श कयामपुर के आगे बारिन बाग रोड पर अंग्रेज़ों से लड़ते हुए मारे गए थे।

नागर ने पलटनी के बादा बेचन चौधरी से मुलाकात की थी। वे दरियाबाद और रूदौली के तोपखाने के चौधरी थे। उनसे नागर को पता चला कि गोरा बाग से छावनी थी। बहुत गोरे मारे गये और खजाना लूटा गया था। दरियाबाद की यात्रा में नागर के साथ रामस्वरूप वाजपेयी भी थे। उनका दावा था कि बेगम हजरत महल बाराबंकी से होकर नेपाल गयी थी। उनका कहना था कि महादेवा वगैरह में बेगम का वही मार्ग प्रसिद्ध है। नागर को यह मार्ग सही प्रतीत नहीं होता था। नागर ने लिखा है कि 'कैसरूततवारीख' और 'बेगमाते-अवध के खतूत' से भी यही पता चलता है कि बेगम सीतापुर होकर नेपाल गयी थीं। दीनदयाल दीक्षित ने अपने पुरखों का इतिहास बताया था। उसके अनुसार भी बेगम बाराबंकी से होकर नेपाल गयी थी। लेकिन नागर को सीतापुर से होकर नेपाल जाने के बारे में मिले प्रमाण ज्यादा प्रामाणिक लगते हैं।

इसके बाद नागर ने अपने साथियों के साथ भयारा में अच्छन साहब के मामू शेख अब्दुल अली किदवई से भेंट की। उनसे नागर ने राजा बलभद्रसिंह के संबंध में आल्हा सुना। उस आल्हे में बलभद्रसिंह की वीरता और अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने का उल्लेख है।

अमृतलाल नागर को पता चला कि जिला जहाँगीराबाद की क्रांति में कोई भूमिका नहीं थी। भयारा के शेख अब्दुल अली से नागर को पता चला था कि जहाँगीराबाद के लोगों ने दोतरफी चाल चली थी। उन्होंने अंग्रेजों और भारतीयों दोनों के साथ दगाबाज़ी की थी। सर होपग्राण्ट की किताब 'सिपॉय वार' में भी यही लिखा हुआ है। नागर ने पता लगाया था कि वहाँ के राजा रज्ज़ाक बख्श के महल से अंग्रेजों के विरूद्ध कागजात मिले थे। उनके पास तोपों की भी व्यवस्था थी। वैसे तो रज्ज़ाक वख्श बहुत संशक्ति व्यक्तित्व रखते थे। उनके बारे में प्रसिद्ध था कि वे दोतरफी चाल चलते हें। लेकिन उनके यहाँ छिपे तोपों की व्यवस्था से नागर ने यह

निष्कर्ष निकाला है कि रज़्ज़ाक बख्श निश्चित रूप से विद्रोहियो का साथ दे रहे थे।

लखनऊ से सोलह मील दूर स्थित बाराबंकी जिले के क्षेत्र कुर्सी में नागर को लखनऊ ने पतन के बाद फौज इकट्ठा होने का पता चला था। वह स्थिति 21 मार्च 1858 में मौलवी के पराजित होने के बाद उत्पन्न हुई थी। नागर को वहाँ हाजी साहब और खुर्शीद दर्जी से क्रांति के स्वरूप का पता चला था। उन दोनों वयोवृद्धों के अनुसार, वहाँ अंग्रेजी फौजों ने बहुत मार-काट मचाई थी। वहाँ लड़ाई बहुत जल्दी समाप्त हो गयी थी। हाजी साहब ने अपनी वालिदा के हवाले से बतलाया कि बेगम हज़रत महल कुर्सी से होकर नेपाल गयी थीं।

बाराबंकी का ही एक क्षेत्र महादेवा है। यह क्षेत्र अत्यंत पावन माना जाता है। वहाँ के देवस्थान के प्रधान पुजारी पं. महावीर प्रसाद अवस्थी ने बताया था कि महादेवा में गदर का बड़ा इतिहास है। उनके अनुसार चिनहट के युद्ध के बाद बेगम, हरदत सिंह (बौंडी), राजा देवीबख्श सिंह (गोंडा), राजा गुरूबक्स सिंह (रामनगर) ने महादेवा में ही एकत्र होकर आगे की योजना बनाई थी।

जिला फ़ैजाबाद गदर में मौलवी अहमदुल्ला शाह के कारण प्रसिद्ध हुआ। खास बात यह है कि मौलवी फ़ैजाबाद के निवासी नहीं थे। फ़ैजाबाद, रायबरेली, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव के जिलों में मौलवी साहब के तूफानी दौरे हुआ करते थे। फ़ैजाबाद के इतिहास में एक नाम राजा मानसिंह का आता है। मानसिंह की भूमिका भी संदेहास्पद रही है। डॉ. मजूमदार के हवाले से नागर ने लिखा है कि 'बंगाल आर्मी' के अवधी क्रांतिकारियों के साथ राजा मानसिंह षड्यंत्र में शामिल थे। बेगम हज़रत महल के समर्थकों में भी उनका नाम मिलता है। नागर ने अवध गज़ेटियर के हवाले से बताया है कि राजा मानसिंह ने अंग्रेज अफसर और उनके परिवार को सुरक्षा प्रदान की थी।

अमृतलाल नागर ने सत्तावनी क्रांति को हमारे देश के वीरों की अटूट परम्परा का एक हिस्सा माना है। उन्होंने बतलाया है कि मंगल पांडे फ़ैजाबाद की अकबरपुर तहसील के सुरहुरपुर गाँव के रहने वाले थे। ('गदर के फूल' पृ-65) मंगल पांडे की फांसी के बाद फ़ैजाबाद क्रांति में कुछ ज्यादा ही सक्रिय हो गया था। मंगल पांडे के सगे भतीजे बुझावन पांडे अपने रिश्तेदारों और खानदानियों के साथ क्रांतिकारी

दल से जा मिल थे। उन सबों ने मिलकर फ़ैजाबाद की सैनिक छावनी पर रात में धावा बोल दिया था। उस छावनी के सभी अंग्रेज या तो मार डाल गये या बंदी बनाए गये।

कर्नल हण्ट ने नवाब आसफुद्दौला की बूढ़ी माता खुर्शीदमहल बेगम के खजाने को अपने सैनिकों की सहायता से लूट लिया। कर्नल हण्ट ने इस लूट के धन को सैनिक पहरे के संरक्षण में लखनऊ भेजने का प्रबंध किया। उसी बीच में बेगम और रानी मानवती ने अंग्रेजी सेना के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। बेगम हज़रत महल और रानी मानवती ने विद्रोही सेना के साथ फ़ैजाबाद में आकर अपना अड्डा जमाया। इस सेना का सबसे पहला और तगड़ा मुकाबला खोजनीपुर के पास कर्नल हण्ट की सेना के साथ हुआ।

बेगम खुर्शीदमहल के जेवरात और खजाने के बेदर्दी के साथ लूटे जाने से जनता में यह अफवाह फैल गयी कि फिरंगी सबके घरों में घुसकर लूट-पाट मचाएँगे। इस अफ़वाह की प्रतिक्रिया स्वरूप अयोध्या में क्रांतिकारियों की बड़ी भारी गुप्त सभा हुई। इस सभा में फ़ैजाबाद जिले भर के और नज़दीकी अन्य जिलों के लगभग सभी विद्रोही नेता उपस्थित थे। उन्होंने इस सभा में अंग्रेजों के साथ युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। फलस्वरूप जिस समय बेगम हज़रतमहल की सेना ने अपनी पूरी शक्ति के साथ खेजनीपुर के समीप कर्नल हण्ट की सेना का दृढ़ मुकाबला किया, तो इन विद्रोहियों ने भी अपनी सेना के साथ कर्नल हण्ट की सेना को चारों ओर से घेर लिया। अन्त में कर्नल हण्ट की सेना बुरी तरह काट डाली गयी। इस लड़ाई में कर्नल हण्ट राणा बेनीमाधव के हाथों मार डाला गया।

नागर ने 1857 की क्रांति में सुल्तानपुर जिले में अमहट गाँव की भूमिका की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है कि सुल्तानपुर से आने वाली क्रांतिकारी सेनाओं का समाचार सुन कर फ़ैजाबाद और सुल्तानपुर के बीच की भूमि अंग्रेज़ों के लिए नरक बन गयी थी। 9 जून 1857 को सुल्तानपुर में क्रांति का श्रीगणेश हुआ था। वहाँ कर्नल फ़िसर और सिविलियन अफसर मारे गये। एक प्रतिष्ठित वकील गणपतिसिंह ने नागर को बतलाया कि सुल्तानपुर में अमहट वालों ने गदर में सबसे बड़ा हिस्सा लिया था। गणपतिसिंह के अनुसार अमहट की जनता ने अपने राजा की आज्ञा

पालन के जोश में अंगेज स्त्रियों और बच्चों तक को नहीं छोड़ा था तथापि देश के लिए उनका ज़ज़्बा काबिल-ए-तारीफ है।

अमृतलाल नागर को गोंडा जिले में राजा देवीबख्श सिंह की लोकप्रियता का पता चला था। वहाँ का बच्चा-बच्चा इस नाम से परिचित था। वहाँ प्रचलित लोकगीतों और आल्हों में देवीबख्श की उपस्थिति उनकी लोकप्रियता को दर्शाती है। राजा देवीबख्श बेगम हज़रत महल के शपथबद्ध साथी थे।

गोंडा से लगभग चालीस-पैंतालीस मील दूर तुलसीपुर है। गदर में तुलसीपुर की रानी राजेश्वरी देवी ने बहुत वीरता का प्रदर्शन किया था। अंत में वे बेगम के साथ नेपाल चली गयी थी। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि बेगम की सुरक्षा में वे अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुई थी। जी.पी. श्रीवास्तव ने राजेश्वरी देवी को 'तुलसीपुर की लक्ष्मीबाई' कहा है। नागर तुलसीपुर नहीं जा सके थे इसीलिए 'गदर के फूल' में उस स्थान का अधिक वर्णन नहीं मिलता है।

नागर के अनुसार सुल्तानपुर को किसी हद तक छोड़कर फ़ैजाबाद के बाद जिला बहराइच ही श्री सम्पन्न है। बहराइच का शुद्ध नाम भराइच है। बहराइच में नागर को ठाकुर ननकऊसिंह (बलभद्रसिंह के भतीजे) से 'जंगनामा' प्राप्त हुआ था। इसमें बलभद्रसिंह के साथ अन्य कई वीरों की शूरता का वर्णन है। इस जंगनामे में जनसाधारण के विभिन्न जातियों के अनेक शूरवीरों के नाम लिखे हैं। जंगनामा में दी हुई सूचना इस बात का प्रमाण है कि संकट के समय भारतीय जाति भेद को भूलकर एक हो सकते हैं।

नागर ने बहराइच के बौंडी और रहुआ क्षेत्र का उल्लेख किया है। बेगम हजरत महल लखनऊ में हार के बाद अपने शहजादे बिरजीसक़दर को लेकर बौंडी आई थी। महाराज हरदत सिंह ने अपना धर्म समझ कर उन्हें शरण दी थी। उन्होंने बेगम की मदद का पूरा प्रबंध किया था। महाराज हरदत सिंह ने भया हरकिशन सिंह को अपना 'कमाण्डिग अफसर' बनाकर बेगम की मदद के लिए भेजा। उनके पैर में गोली लगी और वे ज़ख्मी होकर लौटे। इस लड़ाई में अंग्रेजों की जीत हुई थी। जिस समय बेगम बौंडी में थीं उसी समय नाना राव पेशवा रेहुआ में 3 दिन मेहमान थे। लड़ाई में हार के बाद महाराज हरदत सिंह, बेगम हज़रत महल, नानाराव पेशवा आदि नेपाल के पहाड़ों में भाग गये।

चर्दा की क्रांति में भूमिका के बारे में नागर ने लिखा है कि वहाँ बेगम ने पनाह ली थी। अंग्रेजो द्वारा चर्दा के घिर जाने के बाद बेगम सुरंग से मस्जिदिया के किले में पहुँची। यह किला चर्दा से करीब आठ मील दूर है। वहाँ भी अंग्रेजों से घिर जाने पर वह महादेवा और सोतार होते हुए नेपाल भाग गईं। इस प्रकार बेगम को शरण देने के अलावा क्रांति में चर्दा की भूमिका का ज्यादा उल्लेख नहीं मिलता है।

जिला सीतापुर की छावनी में विद्रोह के प्रथम लक्षण 27 मई, 1857 को प्रकट हुए थे। 2 जून को अवध इर्रेगुलर के जवानों ने सिर उठाया था। उन जवानें को यह आशंका थी कि उन्हें जो आटा खिलाया जाता है उसमें उनका धर्म भ्रष्ट करने के लिए अपवित्र वस्तु मिलायी गयी है।उस आटे को नदी में प्रवाहित करने के बाद भी सिपाहियों का क्रोध शांत नहीं हुआ था। 3 जून को उन्होंने ख़जाना लूटा और गोरे अफसरों को गोली मार दी थी। बहुत से अंग्रेज स्त्री-पुरूष भागने में सफल हुए। कुछ अंग्रेजों ने लखनऊ में शरण ली तो कुछ ने मितौली के राजा लोनेसिंह के पास। परंतु लोनेसिंह ने बाद में उन्हें हथकड़ी-बेड़ी पहना कर लखनऊ भेज दिया। वहाँ उन्हें मार डाला गया।

सीतापुर में मौलवी साहब एक ऐसे वीर थे जिनकी शर्मनाक हत्या के बाद भी उनकी प्रेरणा से सीतापुर 1857 ई. की गर्मियों तक स्वाधीन रहा था। 11 अप्रैल को सर होपग्राण्ट ने इस जिले के बाड़ी नामक स्थान में प्रवेश किया। वहाँ मौलवी साहब अपनी सेना के साथ डटे हुए थे। यहाँ होपग्राण्ट को सफलता नहीं मिली थी। मौलवी अपने साथियों के साथ वहाँ से भाग निकलने में सफल हुए थे। मौलवी ने शाहजहाँपुर से होते हुए अवध में प्रवेश किया था। उस समय अंग्रेज सेनापति पर कॉलिन मुहम्मदी सेना सहित पड़ाव डालना चाहता था। मौलवी की वीरता से सीतापुर काफी समय तक आज़ाद रहा।

उस समय बेगम हजरत महल की सेना का हेडक्वार्ट्स बहराइच जिले के बौंडी गढ़ में था। रूइया के राजा नरपतिसिंह, फ़िरोजशाह, राजा हरदतसिंह, अवध के राणा बेनीमाधव बख्श, गोंडा के अजानुबाहु राजा देवीबख्श सिंह, क्रांति की महाज्योति नाना साहब पेशवा और बाला साहब सभी बौंडी आते रहते थे। इस तरह दूर क्षेत्रों के रहते हुए भी सत्तावनी क्रांति के महारथी बौंडी में बँधे हुए थे।

अक्टूबर 1858 ई. में हरीचन्द्र 6000 की सेना लेकर सीतापुर से सण्डीला की ओर चले। इस भिड़त में वे जर्नल बार्कर द्वारा परास्त हुए थे। प्रधान सेनापति लार्ड क्लाइड का यह आदेश था कि क्रांतिकारियों को घाघरा पर जाने के लिए बाध्य किया जाए, जहाँ क्लाइड का जाल पहले से बिछा हुआ था।

सीतापुर जिले के ख़ैराबाद का महत्व मुंशी हरप्रसाद नाज़िम और मौलवी फ़ज़लहक के कारण है। मौलवी फ़ज़लहक के गदर को अंग्रेजों के ख़िलाफ ज़ेहाद कहा था। उन्होंने हर मुसलमान को इसमें शरीक होना मज़हबी फर्ज़ बतलाया। इसके लिए उन्होंने एक फ़तवा ज़ारी किया था। उन्हें कालापानी की सजा मिली।

जिला रायबरेली के भीरा गोविन्दपुर में राजा बेनीमाधव की अंगेजों से ज़बरदस्त मुठभेड़ हुई थी। लखनऊ में अप्रैल का महीना बड़ी सरगर्मी का रहा था। 2 मई 1857 ई. को मूसाबाग के सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र में 7वीं इर्रेगुलर सेना के सामने चर्बी वाले कारतूस लेने और उसके प्रयोग से इनकार कर दिया था। मंगल पांडे इसी सेना में थे। जब सैनिकों को अंग्रजों द्वारा विवश किया गया तब एक जवान से पंक्ति से बाहर निकलकर चिल्ला उठा, "दीन! फिरंगी के दीन से बचाओ।" इस अवाज़ से सनसनी फैल गयी। वह जवान कई और जवानों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया था। इस पर एक हज़ार जवान इकठठा हुए और गिरफ्तार सैनिकों को ले जाने नहीं दिया। सभी साथ मरना-जीना चाहते थे। उस समय सूबेदार सिपाही, हिन्दू-मुसलमान सब एक थे, भारतीय मात्र थे।

7वीं इर्रेगुलर सेना ने 48वीं रेजीमेंट को इस घटना के बारे में पत्र लिखा। कुछ दिन पहले इसी 48 नंबर के रेजीमेंट ने विद्रोह किया था। इस रेजीमेंट ने वह पत्र सर हेनरी लारेंस को सौंप दिया। दूसरे दिन हेनरी लारेंस गोरी पल्टन के 1500 सवार और तोपखाना के साथ वहाँ पहुँचा। 7वीं इर्रेगुलर सेना भंग कर दी गई थी। उन 120 सिपाहियों में से कुछ छोड़ दिए गए, 30 को फाँसी और 40 को आजीवन की कैद मशक्कत की सजा सुनाई गयी।

अमृतलाल नागर का मानना है कि विद्रोह के आरंभ में अधिकतर भारतीय सिपाहियों ने सविनय अवज्ञा का सहारा लिया था। गोले-बारूद के सामने अडिग रहने वाले ये सिपाही उन सत्याग्रहियों के पुरखे थे जो गाँधी के नेतृत्व में सामने आने वाले थे।

सर हेनरी लारेंस बहुत होशियार और दूरदर्शी व्यक्ति था। बहुत पहले ही उसने तोपख़ाना देशी लोगों से ले लिया था। कई अंग्रेज अफसरों ने अपने मातहत सिपाहियों को विद्रोह से रोकने की कोशिश की लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ था। सर हेनरी ने तोपों की मार शुरू की। तोपों के मुकाबले के हथियारों की कमी के कारण सिपाहियों ने भागना शुरू किया। उनमें से अधिकतर मुदकीपुर की छावनी की ओर भागे थे। वहाँ भी रात भर गर्मजोशी का माहौल रहा था। दूसरे दिन सात नंबर का रिसाला दूर से आता देख मुदकीपुर के एक विद्रोही सूबेदार ने अपनी तलवार ऊँची उठाई थी। उसके पीछे लगभग एक हज़ार देशभक्तों ने वीरता दिखायी थी। दुर्भाग्यवश हथियार की मारक क्षमता की कमी के कारण स्वदेशी दल को मोर्चा छोड़कर भागना पड़ा था। हेनरी ने यह घोषणा को हर आदमी पीछे सौ रुपया इनाम दिया जाएगा। कुछ देशभक्त वीर पकड़े गये, अनेक मारे गये।

अंग्रेजों द्वारा कत्लेआम और सामूहिक फाँसी का क्रम ज़ारी था। अंग्रेजों की बर्बरता के बावजूद क्रांतिकारी भारतीय सेनाओं को भड़काने का काम करते रहते थे। कई सूबेदार अंग्रेजों को क्रांतिकारियों की कार्यनीतियों की सूचना दे देते थे। परिणामस्वरूप कई देशभक्त गिरफ्तार किये गये या फाँसी पर चढ़ा दिए गये थे।

30 मई को लखनऊ में सैनिक विद्रोह आरंभ होने पर अवध में जगह-जगह विद्रोह की आग भड़क उठी थी। सीतापुर, मुहम्मदी, औरंगाबाद, सेकरौरा, गोंडा, बहराइच, मल्लापुर, फ़ैजाबाद, सुल्तानपुर, सलोन, बेगमगंज, दरियाबाद आदि जगहों पर अंग्रेज स्त्रियों बच्चों और पुरुषों को संकटों का सामना करना पड़ा था। आजमगढ़, गोरखपुर शाहजहाँपुर और कानपुर आदि अवध के आसपास के क्षेत्र विद्रोह के सिलसिले में पूरे जोश में थे। अवध की सेनाएँ नवाबगंज (बाराबंकी) में एकत्र हुई। 28 जून को नवाबगंज स्वातंत्र्य सेनाओं का पवित्र संगम क्षेत्र बन गया था। 28 जून को ही उन्नाव जिले के डौंडिया खेड़ा में अंग्रेजों की नाव रेत में फँस गई थी। राव रामबख्श के सिपाहियों ने उन्हें घेरा और कईयों को मार डाला।

29 जून को स्वदेशी सेना लखनऊ से लगभग छः सात मील दूर पर चिनहट में आकर जम गई। स्वदेशी दल की सेना के कमांडर बरकत अहमद थे। चिनहट की ऐतिहासिक जीत का नेतृत्व बरकत अहमद ने ही किया था। सूबेदार शहाबुद्दीन और सूबेदार घमंडी सिंह की सेना भी बड़ी बहादुरी से लड़ी थी। इस लड़ाई में

अंग्रेज परस्त सेना बुरी तरह घिर गयी। शत्रु रणक्षेत्र छोड़कर भागे, उनकी चार तोपे और बहुत सा गोला-बारूद स्वदेशी दल के हाथ लगे थे।

विजयी स्वदेशी सेना ने अंग्रेजों को खदेड़ना शुरू किया था। देखते-देखते स्वदेशी सेना सारे नगर पर छा गयी। दूसरे दिन सुबह अर्थात् 1 जुलाई सन् 1857 के दिन स्वदेशियों को यह ख़बर मिली कि कोतवाली इमामबाड़ा और मुसाफिर खाना वग़ैरह सरकारी माल-असबाब, हरबे-हथियार सब खुले पड़े हैं। यह सुनकर जनता वहाँ लूट मचाने पहुँच गयी थी। इस लूट को देखकर एक शोहदे ने उन्हें सलाह दी कि वे लूट न मचाएँ बल्कि तोपें खींचकर मच्छी भवन पर लगाएँ, इससे सबका नाम होगा। सबने वैसा ही किया। तोप लगायी गयी। कुछ सिपाही चिनहट की लूट में कुछ गोले पा गये थे। वे भी इस स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हो गये थे। उन्होंने रूई की बहुत-सी गाँठों में आग लगाकर आधी रात में मच्छी भवन के फाटक को जलाने का आयोजन किया।

आधी रात को मच्छी भवन में अंग्रेज कमांडर सर हेनरी लारेंस ने भी एक योजना बनायी थी। सर हेनरी ने कर्नल पामार को यह आदेश भेजा कि आधी रात को मच्छी भवन स्थित सेना, ख़जाना, स्त्री-बच्चे, कैदी सभी को लेकर रेजीडेंसी आ जाए और अनावश्यक सामानों तथा बारूद भंडार में आग लगा दें। अंग्रेजों की इस चाल की भारतीयों ने कल्पना भी नहीं की थी। फिर भी भारतीय निराश नहीं हुए। चिनहट की जीत से हमारे सिपाहियों का हौसला बहुत बढ़ गया था। मच्छी भवन के नाश होने पर भी उन्होंने यही समझा कि अंग्रेज उनके डर से मोर्चा छोड़कर भाग गए हैं। यह हौसला अगर उचित नेतृत्व पा जाता तो बात कुछ ओर होती। गदर को एक अच्छी दिशा मिल जाती लेकिन ऐसा हुआ नहीं। अंततः नेतृत्वहीन जोश ने आत्मसंहार कर लिया।

बेगम हज़रत महल ने क्रांति में सम्मिलित होने के बाद पूरी सक्रियता दिखलायी। हज़रत महल ने जगह-जगह दौरे और भाषण द्वारा संगठन का प्रयास किया था। हमारी सेना में स्वाभिमान और सिद्धान्त के लिए मर मिटने का जज़्बा था लेकिन वे आपस में लड़ते थे। इसीलिए सेना का उचित संगठन नहीं हो पाया। बेगम लखनऊ से निकलकर अपने पुत्र के साथ गुरुबख्श सिंह रैकवार के भिठौला गढ़ में रही। उसके बाद बेगम ने रैकवारों के मुखिया हरदत्तसिंह के बौंडीगढ़ में

क्रांति का केन्द्र स्थापित किया था। उन्होंने दिसंबर'58 तक बौंडी से क्रांति के सारे सूत्रों का संचालन किया। वहीं से उन्होंने रानी विक्टोरिया की घोषणा का जवाबी भाषण दिया था। सामन्तों की भी मानसिकता पर उस भाषण के कारण बदलाव आया। उनके भाषण ने देशवासियों में जो जोश भरा था उसके कारण विक्टोरिया के ऐलान के छः महीने बाद तक अवध में विद्रोह की ज्वाला धधकती रही थी।

बहराइच में काज़िम हुसैन खाँ, भटवामऊ ज़मीनदार तजम्मुल हुसैन खाँ, गौडा के राजा देवीबख्श, बरूआ के ठाकुर गुलाब सिंह, महौना के दिग्विजय सिंह, रोइया के राजा नरपति सिंह, राणा बेनीमाधव, बख्श बहादुर, चर्दा के राजा जोतसिंह चौधरी, मुसाहबअली, अनंदी कुरमी सब अपनी-अपनी जगह पर लड़ते रहे और जब उखड़ तो बौंडी में आकर सिमटे। यह देख लार्ड क्लाइव ने नेपाल की सीमा पर चौकस पहरे का प्रबंध किया था। लार्ड क्लाइव बहराइच से लड़ते-भिड़ते बौंडी के निकट पहुँच गये। बेगम, नाना, राणा आदि क्रांति के अमर सेनानियों के डटकर अंग्रेजों से मुकाबला किया। जब यहाँ से पैर उखड़े तो वे तितर-बितर होकर नेपाल भाग गये।

1857 की क्रांति में सबसे पहले सिपाहियों ने अंग्रेजों विरोध किया था। सिपाहियों के कारण ही सामन्तों ने क्रांति की बागडोर संभाली थी। वे सिपाही हमारी जनता के ही प्रतिनिधि थे। इसीलिए राजा-सामन्त आदि के हारने पर भी जनता एकाएक चुप होकर नहीं बैठ गयी। लखनऊ, उसके आस-पास और अवध में सन् 1857 ई. तक अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की आवाज़े उठती रहीं।

लखनऊ पर बेगम हज़रत महल के नेतृत्व में विद्रोहियों का नियंत्रण कायम था। इससे अंग्रेज उच्चाधिकारी चिन्तित थे। लखनऊ तथा आलमबाग के मोर्चों के बीच सम्पर्क भी नहीं रह गया था। कानपुर पर तात्याँ टोपे के अधिकार का समाचार पाने के बाद आलमबाग की रक्षा और लखनऊ पर अधिकार का दायित्व अंग्रेज अफसर आउटड्रूम पर आ गया।

दिल्ली के पतन के बाद लखनऊ ही उतर भारत का प्रमुख केन्द्र था। इसीलिए सेना की यह सर्वोच्च प्राथमिकता थी कि उस पर किसी भी प्रकार अंग्रेजों का अधिकार न हो सके। दिल्ली और अन्य स्थानों से क्रांतिकारी लखनऊ और आस-पास के क्षेत्रों में पहुँच रहे थे। उनमें प्रशिक्षित सैनिक भी थे, परन्तु उनके पास

बहुत उपयोगी हथियार नहीं थे। शंकरपुर के बेनीमाधव ने बहुत से सिपाहियों को भर्ती करने के लिए गाँवों में अपने सहयोगी भेजे थे। उसी समय बेगम ने सुल्तानपुर, गोरखपुर के नाज़िमों को भर्ती अभियान में सहयोग देने का निर्देश दिया। गोंडा और बहराइच के ताल्लुकेदारों को बेगम ने गोरखपुर में चल रहे संघर्ष में सहयोग देने का निर्देश दिया था। ताल्लुकेदारों को नये आदमी भर्ती करने में कठिनाई नहीं हो रही थी क्योंकि पहले वे अंग्रेजों की सेना के लिए अपने क्षेत्रों में सिपाहियों की भर्ती में अंग्रेजों को सहयोग देते रहे थे।

कानपुर मार्ग भी अंग्रेजों के लिए सुरक्षित नहीं रह गया था। उस पर बेनीमाधव के आक्रमण का खतरा बना हुआ था। अवध के नये शासक बिरजीसक़दर के निर्देश पर 10 हजार पैदल सैनिकों का संगठन किया गया था। उनके साथ अंग्रेजी सेना के विद्रोही और कुछ घुड़सवार भी शामिल थे।

इस प्रकार अवध के अलग-अलग क्षेत्रों की गदर में अलग-अलग तरह की भूमिकाओं का पता चलता है। अवध का क्षेत्र होने मात्र से उसे क्रांति में सम्मिलित नहीं माना जा सकता है। जैसे –दुविधापुर सत्तावनी क्रांति के वीर जगजोतसिंह के पुत्र राजा साहब के निवास स्थान के लिए प्रसिद्ध हैं लेकिन क्रांति में उस क्षेत्र की कोई खास भूमिका नहीं थी। इसी तरह मितौली, अम्बरपुर और नौमिषारण्य भी गदर में बहुत सक्रिय नहीं था। इससे पता चलता है कि क्रांति की चेतना हर जगह एक जैसी नहीं फैल सकती है। इसमें मात्रात्मक और गुणात्मक अंतर अवश्यमभावी है। समग्र रूप से क्रांति में अवध की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता है।

1857 की क्रांति के संबंध में अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में लिखा है–

> "अपनी कमज़ोरियों पर सतर्क दृष्टि रखते हुए भी मैं सत्तावनी क्रांति में अपने पुरखों की खूबियों पर मुग्ध हूँ। सन् 1857-58 एक नये सिरे से बनते हुए राष्ट्र की परम्परागत रूढ़ कमज़ोरियाँ हारीं– हमारी परम्परागत प्रगतिशील निष्ठा और शक्ति तो उस अग्नि-परीक्षा से विजयिनी सिद्ध होकर ही निकलीं और गदर के बाद भारत को नया रूप देने में समर्थ सिद्ध हुई।"[18]

अमृतलाल नागर के इस कथन से उनके मंतव्य का पता चलता है। उनका यही प्रयास था कि 1857 की क्रांति में जो कुछ भी प्रेरणादायी है उनको हम ग्रहण करें जिससे एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण हो सके।

(iii) क्रांतिकारियों का स्वार्थ और राष्ट्रीय लक्ष्य

अमृतलाल नागर ने अपनी पुस्तक 'गदर के फूल' में 1857 की क्रांति के सेनानियों के चरित्र और कार्यशैली पर विचार किया है। उन्होंने सेनानियों के क्रांति में भाग लेने के कारण के रूप में स्वार्थ या राष्ट्रीय लक्ष्य की पड़ताल की है। नागर ने पुस्तक के आरंभ में ही लिखा है कि –

> "शंकरपुर जिला रायबरेली के राणा बेनीमाधव बख्श, गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह और चहलारी के ठाकुर बलभद्रसिंह ये तीनों व्यक्ति निश्चित रूप से अवध की स्वतंत्रता के लिए लड़े थे और तीनों में से एक ने भी अंग्रेज़ों के सामने न तो हथियार ही डाले और न सिर झुकाया। अट्ठारह वर्ष के नौजवान बलभद्रसिंह ने तो समर में अनोखी वीरता दिखलाते हुए अवध की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण निछावर किए थे।"[19]

नागर का उददेश्य 1857 की क्रांति के वास्तविक नायकों का पता लगाना भी था। उनका मानना है कि कुछ लोगों को बेवजह महत्त्व दिया गया है और कुछ लोग उपेक्षित रह गये हैं। इसीलिए सही तथ्यों का पता लगाना बहुत आवश्यक है। जैसे– दरियाबाद के बाबा रामस्नेही के लिए प्रसिद्ध था कि उन्होंने 1857 की क्रांति में हिस्सा लिया है। नागर की खोजबीन से इस बात का खुलासा हुआ कि यह एक गलतफ़हमी थी।

अवध में चहलारी के राजा ठाकुर बलभद्रसिंह का बहुत महत्त्व था। उन पर कई कविता और लोकगीत मशहूर थे। नागर ने अपनी पुस्तक में अध्यापक तुलसीराम द्वारा सुनाया एक कविता उद्धृत किया है–

> "चहलारी कौ नरेस निजदल मो सोलह कीन,
> तोप को पसारा जो समीपै दागि दीना है।
> तेगन से मारि मारि तोपन को छीन लेत,
> गोरन को काटि काटि गीधन को दीना है।
> लंदन अंग्रेज तहाँ कंपनी की फौज बीच,
> मारे तरवारिन के कीच करि दीना है।
> बेटा श्रीपाल को अलेंदा बलभद्र सिंह,
> साका रैकवारी बीच बांका बांधि दीना है।।"[20]

नागर को पता चला कि दरियाबाद के राय अभिराम बली, सिकरौरा के जमींदार अजब सिंह और उनके साथी अल्ला बख्श ये सभी सत्तावन के वीरों में थे। अल्ला बख्श, कयामपुर के आगे बारिन बाग रोड पर अंग्रेजों से लड़ते हुए मारे गये। अजबसिंह इतने बहादुर थे कि अंग्रेज उनका सिर काट कर ले गये और लखनऊ के म्यूजियम में रख दिया था। वहाँ वह बहुत दिनों तक रखा गया था।

हड़हा के राजा, रानी रतन कुंवर, बरकटहा के ठाकुर, रानीमऊ के ताल्लुकेदार और कमियार के शेर बहादुर सिंह–ये सब राणा बेनीमाधव के संघ में थे और गदर में लड़े थे। नागर ने तुलसीपुर की रानी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्होंने अंग्रेजी सेना को रोकने के प्रयास में वीरगति प्राप्त की थी।

1857 की क्रांति का एक अनुपम वीर ठाकुर बलभद्रसिंह था। वह तैंतीस गाँवों का साधारण जमींदार तथा चहलारी का रहने वाला था। नवाबगंज की लड़ाई में शहीद होकर वह अमर हो गया। उसकी वीरता और कारनामों का विदेशियों द्वारा भी वर्णन किया गया है। इससे किसी भी भारतीय का मस्तक गौरव से ऊँचा उठ जाता है। शत्रु भी जिसकी वीरता की तारीफ़ करे, उसकी वीरता का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

सर होपग्राण्ट ने लिखा है–

> "... मैंने आज तक ज़मींदारी के इन लोगों के आचरण के समान शानदार कुछ भी नहीं देखा। ... उनका सरदार लम्बा-चौड़ा पुरुष था और उसके गले में घेघा थ। उस व्यक्ति को किसी भी प्रकार का भय नहीं झुका पाता था।"[21]

नागर ने लिखा है कि निन्यानवे वर्ष बाद आज भी बाराबंकी जिले के गाँव गाँव में असंख्य भारतीय जन की वाणी पर चहलारी के अमर शूर बलभद्रसिंह का वास है। जिसे शत्रु मित्र सभी सराहें वही वास्तविक विजेता है।

1857 के क्रांतिकारियों में बाबा रामरणदास, अच्छन खाँ, शम्भू प्रसाद शुक्ल एवं अमीर अली आदि अंग्रेज़ी सेना द्वारा पकड़ लिए गये। बाबा रामचरणदास और अमीर अली को अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि के समीपस्थ कुबेर टीले पर एक इमली के पेड़ से लटकाकर फाँसी दे दी गई थी। अच्छन खाँ तथा शम्भू प्रसाद शुक्ल के सर रेतियों से रेत-रेतकर अंग्रेजों ने उनसे विद्रोहियों का भेद पूछना चाहा किन्तु इन

बहादुर देशभक्तों अपने प्राण त्याग दिए पर भेद नहीं बताए। इस प्रकार उनहोंने अपने ज़ीवन से अधिक राष्ट्रीय लक्ष्य को महत्त्व दिया था।

बाबा रामचरण दास और अमीर अली ने एक बड़ा काम किया था कि राम जन्मभूमि और बाबरी मस्जिद विवाद को समाप्त कर दिया। उन्होंने उक्त भूमि को हिन्दुओं को वापस दिलाने के लिए मुसलमानों को राज़ी कर लिया था। इसके कारण अंग्रेजों में बुरी तरह घबराहट फैल गयी थी। उस कार्य में कहीं उनका क्षुद्र स्वार्थ जुड़ा हुआ नज़र नहीं आता है। वह पूर्णतया राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए किया गया काम था।

अमृतलाल नागर ने गोंडा के देवीबख्श सिंह की वीरता के किस्से सुनाने के लिए वहीं एक सनाढ्य ब्राह्मण जियालाल से आग्रह किया था। ठेला खींचने वाले जियालाल ने देवीबख्श के बारे में एक लोक रचना सुनाई जो निम्न प्रकार हैं–

"राजा देवीबक्स लोह वंका, जिनकी रत्ती भर न संका।
वहि बजवाय दीन है डंका।
राजा एक सर बंधाय दीन लाय,
जब राजा कै राज रहा, तब सुखी सबै संसार रहा।
धान जुंधरिया, साँवा, कोदों, सस्तां भाव बिकाय रहा।।
घर कोरी से जोड़ा बिनावै, मरदो जहिनाव रहा।
सिकिया पट्टाअडर बाफता औरत का पहिनाव रहा।।...."[22]

आल्हा से देवीबख्श की लोकप्रियता का पता चलता है। राजा देवीबख्श ने बेगम हज़रत महल को माता कहा था। एक अंग्रेज सेनापति ने राजा देवीबख्श से कहलवाया कि अगर वह बेगम को छोड़ दें तो उनका राज्य ज़ब्त नहीं किया जाएगा। देवीवख्श ने जवाब दिया कि वह शरीर रहते अपनी माता का साथ नहीं छोड़ सकते। इस प्रकार राजा देवीबख्श में विद्रोह का झंडा ऊँचा रखा था। उस समय उन्हें अगर स्वार्थ की चिंता होती तो वे अंग्रेजों से हाथ मिला सकते थे। लेकिन उन्होंने राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए बेगम का साथ देना जरूरी समझा था। राजा देवी बख्श ने बड़ी वीरता के साथ अंग्रेजों से मुकाबला किया था। अंत में राजा देवीबख्श भी बेगम और नाना के साथ नेपाल भाग गये थे। नेपाल के जंगलों में ही उनका देहान्त हो गया।

गोंडा से लगभग 40-45 मील दूर तुलसीपुर स्थित है। वहाँ की रानी राजेश्वरी देवी ने बेगम का बहुत साथ दिया था। राजेश्वरी देवी के बारे में कुछ

इतिहासकार कहते हैं कि वह बेगम की रक्षा में अंग्रेजों से लड़ती हुई वीरगति को प्राप्त हुई और कुछ इतिहासकार मानते हैं कि वह भी बेगम के साथ नेपाल भाग गयी थीं।

सन् 1857 के वीर चर्दा नरेश राजा जोतसिंह के पुत्र राजा शिवराज सिंह (आयु लगभग 80 वर्ष) ढौंढ़े गाँव नेपालगंज में रहते थे। नागर के वहाँ पहुँचने पर शिवराज सिह से तो मुलाकात नहीं हो पायी लेकिन उनके बीस-बाईस वर्षीय बड़े पौत्र कुंवर हरनाम सिंह से मुलाकात हुई। उनहोंने अपने वंश का लिखित इतिहास नागर को दिया था। उस इतिहास के अनुसार चर्दा नरेश जोतसिंह ने 1857 के संगठन में भाग लिया और बागी घोषित हुए थे। नानाराव पेशवा ने इनके किले में आश्रय लिया था। राजा जोतसिंह ने राष्ट्रीय हित के लिए अंत तक नानाराव की रक्षा की थी। उन्होंने अंग्रेजों के हर लालच को ठुकरा दिया था। परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने चर्दा पर हमला कर दिया। राजा जगजोतसिंह ने नाना साहब को अपने बहनोई राजा देवीबख्श सिंह के संरक्षण में सुरंगों के रास्ते गुरखवाली भेज दिया। जगजोत सिंह ने अंग्रेजों से टक्कर ली लेकिन जीत न सके थे। अंत में वे चर्दा का किला छोड़कर मस्जिदिया के किले में आ गये थे। उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि बदला लिये बिना चर्दा के किले में नहीं लौटेंगे। बदला लेना सम्भव न हो सका इसीलिए वे चर्दा कभी न गये। अंग्रेजों ने मस्जिदिया पर भी आक्रमण कर दिया। वहाँ से भागकर वे नेपाल चले गये। उन्होंने अंत तक अंग्रेजों के आगे कभी सिर न झुकाया।

सीतापुर जिले में रामकोट के राजा, बिसवां के कायस्थ ओर सेठ अंग्रेजों के भक्त बने रहे, बाकी सब विद्रोही हो गये। ओयल और मितौली के राजाओं के बारे में अंग्रेज यह नहीं निश्चित कर पाते थे कि वे उनके पक्ष में हैं या विपक्ष में? महमूदाबाद के राजा नवाब अली खाँ ने पहले अंग्रेजों का साथ दिया किंतु बाद में वे उनके प्रबल शत्रु बन गये। चहलारी के रैकवारों ने अपने भिठौली और बौंडी के सजातीय नरेशों का साथ दिया था। पूरा जिला सिपाहियों की हलचल से भरा था। इस समय जिले के शासन की बागडोर खैराबाद के नाज़िम हरप्रसाद सम्हाले हुए थे।

इस तरह सीतापुर बहुत मजबूत था। यही कारण है कि अंग्रेज इस जिले में लखनऊ के पतन के बाद ही प्रवेश कर सके थे। इस जिले के बाड़ी नामक स्थान में मौलवीं अहमदुल्लाशाह और उनके साथियों ने जनता में देशरक्षा का जोश भर दिया था। मौलवी अहमदुल्ला की शर्मनाक हत्या के बाद भी जनता का जोश ठंडा नहीं हुआ था।

मितौली का राजा लोनेसिंह कायर व्यक्तित्व का था। उसने न पूरी तरह अंग्रेजों का साथ दिया और न'क्रांतिकारियों का। राजा लोनेसिंह जीतने वाले के पक्ष में रहना चाह रहा था। वह यह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि किस पक्ष की जी होगी। इसीलिए उसने अंग्रेजों को अनिच्छापूर्वक शरण दी और उनके साथ बुरा बर्ताव किया। भारतीय सेना को जीत की स्थिति में देखकर जहाँ लोनेसिंह अंग्रेजों पर एहसान जताता वहीं इसके विपरीत स्थिति में अंग्रेजों की खुशामद करता था। इसीलिए अंग्रेज कभी लोनेसिंह के कृतज्ञ नहीं हुए। वैसे भी ऐसा दोहरा चरित्र किसी का आदर नहीं प्राप्त कर सकता है। लोनेसिंह और उनके साढू भाई 1857 की पराजय के प्रतीक चरित्र हैं। नागर ने पंडित रामसेवक पाण्डेय नामक बुर्जुग से मुलाकात की थी। उनसे पता चला कि राजा लोनेसिंह ने बेगम की बड़ी सहायता की थी। एक समय उनकी राजधानी मितौली विद्रोहियों का केन्द्र बन गयी थी। इससे तो लगता है कि राजा लोनेसिंह के व्यक्तित्व में स्थिरता नहीं थी। नागर के शब्दों में–"गदर में लोनेसिंह का नायकत्व फिसल पड़े की हरगंगा ही था।"[23]

रायबरेली के कनपुरिया क्षत्रियों में मानसिंह घराने के ठाकुर रामगुलाम सिंह का नाम भी सत्तावनी क्रांति के सिलसिले में आता है। इनकी कार्यनीति को देखकर लगता है कि उन्होंने सारा काम स्वार्थ को केन्द्र में रख कर किया। राष्ट्रीय लक्ष्य का उन्हें ज़रा भी ध्यान नहीं था। प्रारंभ में रामगुलाम सिंह ने राजा मानसिंह का साथ दिया, किन्तु बाद में अंग्रेजों से मिल गये थे। उन्होंने अपने स्वार्थ के अनुसार क्रांतिकारियों या अंग्रेजों का साथ दिया था। जब उनके साले राजा हनुमंत सिंह ने अंग्रेज जनरल बीरू साहब से रामगुलाम सिंह पर आक्रमण करवाया तब वह भागकर शंकरपुर के राजा बेनीमाधव के पास चले गये थे फिर नेपाल भाग गये। अंग्रेजों ने अपनी खोज-बीन में उसे अपना सहयोगी पाया था। रामगुलाम सिंह को नेपाल से

बुलाकर उन्नाव जिले के चार गाँव गुज़ारे में दिये थे। इस प्रकार रामगुलाम सिंह की कार्यनीति देशभक्ति के बदले स्वभक्ति का संकेत करती है।

रायपुर में भीरा गोविन्दपुर नामक स्थान पर राणा बेनीमाधव की अंग्रेजों से ज़बरदस्त मुठभेड़ हुई थी। 1857 के क्रांतिवीरों में राणा बेनीमाधव का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। राणा ने अंत तक बेगम का साथ दिया था। उन्होंने दृढ़ स्वर में जनरल बीरू साहब से कहा था–"हम धरम के बदे लड़ब, बेगम और बिरजीसक़दर का साथ न छोड़ब।"[24]

अंग्रेज बीरू साहब राणा के दोस्त थे। उन्होंने राणा से कहा था कि अगर वे अंग्रेजों से मिल जाते हैं तो जितना इलाका अंग्रेज (बीरू साहब) जीतेंगे उसका आधा राणा को दे देंगे। इसके बाद भी राणा का निश्चय अटल रहा। यह इस बात का संकेत देता है कि उनके लिए राष्ट्रीय लक्ष्य का महत्त्व स्वार्थ से ज्यादा था।

अमृतलाल नागर ने गोरखपुर के मोहम्मद हुसैन नाज़िम का विस्तृत विवरण तो नहीं दिया है किन्तु उनकी प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि मोहम्मद हुसैन ने लोनेसिंह से अच्छा आदर्श उपस्थित किया है। जहाँ लोनेसिंह ने परिस्थितिवश क्रांतिकारियों का साथ दिया था वहीं मोहम्मद हुसैन ने संकट में पड़े अंग्रेजों को उवारा, सुरक्षित स्थान तक पहुँचाया और उसके बाद भी वे अंग्रेजों के शत्रु बने रहे थे।

दुर्गाबख्श सिंह के पुत्र शिवरतन सिंह ने 1857 की क्रांति में भाग लिया था। शिवरतन सिंह और उनके भाई जगमोहन सिंह सिरियापुर के पास लोनी नदी के किनारे 13 मई सन् 1858 में अंग्रेजों से लड़ते हुए मारे गये थे।

नागर ने 1857 की क्रांति को सामंतवाद के विरूद्ध नहीं दिखलाया है। उनके अनुसार इस क्रांति में सिपाही, आम जनता के साथ सामंतों ने भी अपनी भूमिका निभाई थी। रानी लक्ष्मीबाई ओर बेगम हज़रत महल दोनों सामंत परिवार की सदस्या थीं। 1857 की क्रांति में उनकी सक्रियता उस सामंत परिवार के प्रतिनिधि के रूप में ही थी। वह सामंवाद के पराभव के लिए नहीं बल्कि उसके सम्यक् सुधार के लिए लड़ रही थीं। उनका अंतिम लक्ष्य सामंतवाद का विस्तार नहीं था। उन्होंने सामंती वर्जनाओं को एक स्तर पर ध्वंस करने का प्रयास किया था।

ध्यातव्य है कि इतनी बड़ी संख्या में जनता बेगम और बिरजीस कदर का साथ दे रही थीं तो निश्चित रूप से उन्हें बेगम में देश के प्रति निष्ठा नज़र आयी होगी। बेगम ने लक्ष्मीबाई की तरह अलौकिक वीरता और असाधारण युद्ध कौशल के साथ अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी थी। नागर का मानना है कि बेगम के चरित्र में स्वाभिमान और तेज दोनों मौजूद था। हज़रत महल को बचपन से ही ऐसी परम्परा में रहना पड़ा था, जिसमें स्त्री को पुरुष की भोगाड्.गना बनने के लिए तैयार किया जाता है। बेगम के बचपन का कोई इतिहास नहीं मिलता है। वाज़िदअलीशाह ने उन्हें 'ज़नेख़ानगी' का ख़िताब दिया था। नागर ने लिखा है–

> "स्त्री के अन्तर का यह सप्त विद्रोह मातृत्व की शक्ति लेकर अपने बेटे का राज्य बचाने के लिए इस प्रकार विकसित हुआ कि राष्ट्रीयता का भाव सिद्ध कर सदा क लिए अनुकरणीय आदर्श बन गया।"[25]

अमृतलाल नागर ने स्थान-स्थान पर हजरत महल की लक्ष्मीबाई से तुलना की है। उन्होंने लिखा है कि यद्यपि सर्वथा विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रकर लक्ष्मीवाई और बेगम राजमहलों में आईं, फिर भी उनमें एक बड़ा साम्य था–दोनों ही जन-साधारण के कुलो की कन्याएँ थीं। इसीलिए हम लक्ष्मीबाई और हज़रतमहल को तत्कालीन नारी समाज का प्रतिनिधि मान सकते हैं।

नागर ने किंवदन्तियों द्वारा यह सूचना प्राप्त की कि हज़रत महल ने ताल्लुकेदारों का संगठन करने के लिए जगह-जगह भाषण दिए थे। बेगम ने नेताओं के संगठन के अभाव में मम्मू खाँ, मौलवी साहब, जनरल साहबान, सूबेदार साहबान के भरोसे बैठना उचित नहीं समझा था। उन्होंने अपने भाषणों से सामन्तों को उत्तेजित करना शुरू किया था। उन्होंने विभिन्न इलाकों के नाज़िमों–चकलेदारों को संगठित किया, प्रमुखतम हिन्दू सामंतों का सहयोग प्राप्त किया था। उन्होंने बैसवारों के प्रमुख राणा बेनीमाधव बख्श, रैकवारों के प्रमुख हरदत्तसिंह, गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह विसेन, अहिलन, गौड़ कनपुरिया आदि अवध के समस्त क्षत्रिय सामन्त मण्डल का सहयोग प्राप्त किय था। यह कोई आसान काम नहीं था। यह बेगम की संगठन शक्ति की खूबी को दर्शाता है।

बेगम हजरत महल की संगठन क्षमता और राष्ट्रीय लक्ष्य के प्रति उनका समर्पण अवध की जनता में स्फूर्ति और चेतना प्रसारित करने में समर्थ हुआ था।

इस स्वातंत्र्य चेतना ने लाखों लोगों को बेगम के एक इशारे में मर मिटने के लिए तैयार किया था। अवध की जनता को इस बात का विश्वास था कि बेगम समूचे राष्ट्र के हित के लिए लड़ रही हैं। वैसे तो बेगम का साथ देने या क्रांति का भागीदार बनने वाले अधिकांश सामंत प्रमुख रूप से वे थे, जिनके साथ अंग्रेजों ने अन्याय किया था, उनकी जागीरें हड़पी थीं। निश्चित रूप से इस तथ्य में सच्चाई है किन्तु उन्होंने बेगम के प्रति जिस आस्था को दिखाया वह उनकी देशभक्ति की भावना का परिचायक है।

बेगम हज़रत महल के ओज और संगठन शक्ति की प्रशंसा करते हुए नागर ने लिखा है–

> "उनकी वाणी में निःसन्देह बड़ा ओज होगा। और इसी से मुझे लगता है कि विक्टोरिया के घोषणा पत्र के उत्तर में बेगम हज़रत महल के ऐतिहासिक ऐलान का मजूमन स्वयं उनका ही लिखा होगा। बेगम हज़रत महल की संगठन शक्ति सचमुच ही बहुत ऊँचे दर्जे की थी।"[26]

यह माना जाता है जनता और सामंत बिरजीस क़दर की गद्दी बचाने के लिए बेगम का साथ दे रहे थे। नागर इस बात से सहमत नहीं थे। उनका मानना है कि 'सामूहिक स्वार्थ' के बिना इतना मजबूत संगठन संभव नहीं था। इस तरह यहाँ भी 'स्वार्थ' की बात आती है। वस्तुतः यह मानव-स्वभाव है कि बिना स्वार्थ के उसका क्रियाशील होना मुश्किल होता है। इसीलिए अगर मनुष्य क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठकर सामूहिक स्वार्थ की बात सोच पाता है तो यही उच्चतर आदर्श हैं इस सामूहिक स्वार्थों से राष्ट्रहित सधता चला जाता है।

नागर ने लिखा है कि गदर के दिनों में बेगम की आयु अधिक से अधिक छब्बीस-सताईस की रही होगी। भरे यौवन में राजमाता का पद सम्हालने वाली देवी प्रणम्य है। 'जंगनामा' में बेगम के प्रति व्यक्त हुई कवि की श्रद्धा जन-मन की श्रद्धा है।

इतना अवश्य है कि क्रांति के अंतिम समय में बेगम ने अंग्रेजों से मिले हुए राणा जंगबहादुर को लिख कर दिया था–"सिपाहियों ने मेरे बेटे को ज़बरदस्ती गद्दीनशीन कर दिया। मेरा और मेरे बेटे का अंग्रेजों से बैर नहीं।"[27]

लेकिन उन्होंने अंग्रेजों की सहायता और पेंशन स्वीकार नहीं की थी। उन्हें नेपाल में शरणगत बने रहना ज्यादा सम्माननीय लगा। अगर वो चहतीं तो नेपाल नरेश की भोगाड्.गना बनकर सुखी जीवन बिता सकती थीं लेकिन यह उन्हें अपने सम्मान के खिलाफ़ लगा। बेग़म के उपर्युक्त कथन के पीछे राणा की धमकी हो सकती है जिसमें उसने कहा था कि बेगम को अंग्रेजों के साथ ही उसकी सेना से भी लड़ना होगा।

यद्यपि इतनी बहादुर रानी का अंत में एक धमकी से घबरा जाना उचित नहीं जान पड़ता तथापि यह बेटे की सुरक्षा के लिए उनके मोह को दर्शाता है। यह उनके योद्धा मन पर मातृत्व के हावी होने का द्योतक है। सम्भव है उन्होंने ऐसा निर्णय इसीलिए लिया क्योंकि अन्य क्रांतिकारी भी लगभग हार मान चुके थे। ऐसे में उनमें भी मानवीय दुर्बलता का हावी हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

नागर ने लिखा है कि काठमाण्डू (नेपाल) में बेगम ने एक मकान ले लिया और साधारण जीवन बिताने लगीं। इससे तो यह स्पष्ट है कि उनका कथन सुख पाने की इच्छा के कारण नहीं था। उचित संगठन के अभाव में अंग्रेजों से अकेले लड़ा नहीं जा सकता था।

अमृतलाल नागर ने 1857 के संबंध में राजा नरपति सिंह का भी उल्लेख किया है। राजा नरपतिसिंह हरदोई जिले में बिलग्राम से दस मील दूर सदामऊ (रोइया ग्राम) के रहने वाले थे। वे अपने संबंधी शिवराजपुर के चंदेल ठाकुर सतीप्रसाद की प्रेरणा से अंग्रेजों के विरोधी संगठन में सम्मिलित हुए थे। अंग्रेजों ने नरपतिसिंह को अपनी ओर मिलाने के लिए सभी उपाय किये परंतु उनका निश्चय स्वाभिमानी क्षत्रिय की परम्परा के अनुसार दृढ़ था।

इसी तरह डौंडिया खेड़ा के राव रामबख्श सिंह के बारे में नागर ने लिखा है कि वे अत्यंत धर्मात्मा और निर्भीक व्यक्ति थे। उनकी नस-नस में स्वतंत्रता का अभिमान संचरित था। सेमरी के युद्ध में राव रामबख्श की सेना भी लड़ी थी। बैसवारे और अवध के पतन के बाद राव रामबख्श सर्वहारा होकर बनारस भाग गये और छिपे तरीके से रहने लगे। वहीं उनके नौकर चंदी ने धोखा देकर उन्हें गिरफ्तार करा दिया था। अंग्रेजों ने उन्हें क्षमा माँगने पर विवश करना चाहा पर वे न झुके। 18 जून 1861 ई. को वे बक्सर लाये गये और बरगद के पेड़ से लटकाकर

उन्हें फाँसी दी गयी। इस प्रकार राव राबख्श सिंह ने राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की थी।

1857 के क्रांतिकारियों के लिए कहा जाता है कि वे अपने स्वार्थ के कारण क्रांति में शरीक हुए थे किन्तु निम्न तथ्य से इस बात का पता चलता है कि उनका एक राष्ट्रीय लक्ष्य भी था–

> "जो ताल्लुकेदार इस मुक्ति संग्राम में शामिल न होकर अंग्रेजों की चाटुकारिता में लगे रहे, उनके प्रति बेगम ने कड़ा रूख अख्तियार किया था। इसका एक उदाहरण है, एक सनद द्वारा राजा मानसिंह की रियासत का छीना जाना। मानसिंह ने अंग्रेजों से मदद मांगी मगर अंग्रेज फैजाबाद में घुस पाते तब न! बेगम के आदेश पर भारतीय सैनिकों ने मानसिंह को उसके क़िले में घेर लिया और उसे माफ करने की यह शर्त रखी कि वह तीन लाख रुपये बेगम को दे, स्वतंत्रता सेनानियों को चार माह की तनख्वाह और 15 तोपें दे तथा खुद क्रांति में शामिल हो।"[28]

इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि क्रांतिकारियों ने अपना स्वार्थ साधते हुए भी राष्ट्रीय लक्ष्य का ध्यान रखा था। एक बार क्रांति में सम्मिलित हो जाने के बाद वे पीछे नहीं हटे। उन्होंने अधिक से अधिक लोगों को अपने साथ मिलाने का प्रयास करते हुए राष्ट्रहित में काम किया।

(iv) देशभक्ति और राजभक्ति

1857 की क्रांति के संबंध में देशभक्ति या राजभक्ति को सुनिश्चित करने से पूर्व क्रांति का चरित्र भी जान लेना आवश्यक है। पी.सी. जोशी ने अपने एक लेख में लिखा है कि अंग्रेजों की सेवा में लगे सिपाहियों का पारिवारिक और सामयिक बहिष्कार कर दिया जाता था। इससे जोशी ने यह निष्कर्ष निकाला कि 1857 के विद्रोह का चरित्र राष्ट्रीय और लोकप्रिय था।

1857 की क्रांति के चरित्र के बारे में इतिहासकारों की अलग-अलग मान्यता रही है। मजूमदार को 1857 की क्रांति की राष्ट्रीयता या देशभक्ति की भावना वहीं नहीं दिखती है। उनका मानना है कि राष्ट्रीयता की भावना तब होती है जब सभी एक उद्देश्य के लिए लड़ते है लेकिन यहाँ सबका अपना अपना स्वार्थ था। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ लड़ने वालों में सिपाहियों ने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मजूमदार का मानना है कि सिपाहियों का उद्देश्य अपने धर्म को ईसाइयों द्वारा

प्रदूषित करने से बचाना था। उनका उद्देश्य कहीं से भी भारत की स्वतंत्रता को पुनः हासिल करना नहीं था। मज़ूमदार के विवेचन से ऐसा लगता है कि उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को भी क्रांति में संगठन के अभाव से जोड़कर देखा है।

मजूमदार ने सिपाहियों के संघर्ष को जहाँ धर्म की रक्षा से जोड़कर देखा वहीं ताल्लुकेदारों को संपत्ति पुनः पाने के लिए संघर्षरत बतलाया था, लेकिन उनका यह भी मानना है कि ताल्लुकेदारों ने अंग्रेजों से लड़ना सम्मानजनक समझा। मज़ूमदार ने लिखा है –

> "The great majority of them had to fight for retaining possession of the lands which they had recovered by force from the auction purchasers, and quite a considerable member, faced with the alternatives of loss of property and probably also of life, and the fight to the lost, chose the latter and more honourable course".[29]

पी.सी. जोशी 1857 की क्रांति का चरित्र राष्ट्रीय मानते हैं। लेकिन कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह राष्ट्रीय विद्रोह नहीं था क्योंकि इसमें सम्पूर्ण भारत ने भाग नहीं लिया था। लेकिन जोशी ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है कि यह एक विस्तृत क्षेत्र में हुआ था। उन्होंने यह भी लिखा है कि 1857 की क्रांति में विविध जाति, जनजाति, धर्म तथा राज्यशाही (kingdom) के लोगों ने साथ मिलकर लड़ा था। यह पहला विद्रोह था जिसमें हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर मुकाबला किया था। इस प्रकार पी.सी.जोशी के अनुसार भारतीयों में देशभक्ति की भावना विद्यमान थी। जोशी का यह मानना है कि भारतीयों में ब्रिटिश सत्ता के प्रति जो घृणा की भावना थी वह निश्चित रूप से देशभक्ति की भावना के कारण आ सकती है। जोशी के निम्न कथन से भी यही पता चलता है कि उन्होंने 1857 की क्रांति के चरित्र को राष्ट्रीय माना है–

> "It was very healthy national feeling to prefer our own rulers to the foreign rulers and have the strength and confidence to deal with the failings and limitations of our rulers in our own way and according to our own strength. This is exactly what the Indian revolutionary leaders of 1857 did."[30]

हाँ, इतना अवश्य है कि जोशी ने अंत में यह भी जोड़ा है कि किसान पूरी तरह अंग्रेजों के विरूद्ध थे लेकिन उनकी निष्ठा अपने गाँव और राजा के अधिकार क्षेत्र

तक सीमित थी। इस सीमित सोच में भी सकारात्मक पहलु को देखते हुए नागर ने 'गदर के फूल' में लिखा है–

> "सौ वर्ष पहले के लोग भले ही देश को नक्शे के रूप में न जानते हों, मगर अपनी धरती अपने पास रखने की चेतना, वह स्वाभिमान उनमें जरूर था। और यह देशभक्ति का बीज नहीं तो फिर है क्या?"[31]

भारतीयों में निष्ठा तो थी पर उसका स्वरूप क्या था, उसकी पड़ताल करना आवश्यक है। 7 अप्रैल 2009 को 'जनसत्ता' दैनिक समाचार पत्र में श्री भगवान सिंह का लेख 'वफादारी किसके प्रति' प्रकाशित हुआ था। उस लेख में उन्होंने महाभारत के चरित्र भीष्म पितामह और धृतराष्ट्र के कथन के द्वारा यह स्पष्ट करना चाहा है कि निष्ठा देश या राज्य के प्रति होनी चाहिए, न कि सत्ता पर आसीन व्यक्ति के प्रति।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीयों में सम्पूर्ण देश को अपना राष्ट्र मानने की भावना का अभाव ही 'राष्ट्रीयता' की भावना में सबसे बड़ा बाधक था। विपिन चन्द्र ने लिखा है–

> "एक अखिल भारतीय भावना न होने के कारण इन सिपाहियों ने शेष भारत पर विजय करने में अंग्रेजों की सहायता की थी। मगर उनमें अपने क्षेत्र और स्थान के प्रति प्रेम और निष्ठा थी और वे यह पसंद नहीं करते थे कि उनकी जन्मभूमि विदेशी अधिकार में चली जाए।"[32]

इस कथन से यह स्पष्ट है कि भारतीय सिपाहियों में देशभक्ति थी, राजभक्ति नहीं। हाँ, इतना आवश्य है कि इस देशभक्ति की भावना का फ़लक इतना सीमित था कि वे अपने देश को गुलाम बनाए रखने में सहयोगी बनते चले गये थे।

1857 की क्रांति के समय सामंतों की मनःस्थिति का भी पता लगाना आवश्यक है। इस समय कुछ सामंत अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा निभा रहे थे क्योंकि उनकी निष्ठा सत्ता के प्रति थी। इसके विपरीत कुछ सामंत देश के प्रति अपनी निष्ठा निभा रहे थे। जनता अपने करीबी शासक के प्रति निष्ठा निभाती थी। वे शासक छोटे सामंत होते थे, जो जनता से जुड़े रहते थे। जनता के सुख-दुख से उन शासकों को सरोकार था। इसी कारण उनके कहने पर जनता भी क्रांति में सम्मिलित हो जाती थी। कितने ही ऐसे लोग थे जो स्वहित में क्रांति में सम्मिलित हुए थे किन्तु फिर उनमें देशभक्ति के भाव जागृत हो गए थे।

1857 की क्रांति के समय बहुत कम ही लोग होंगे जिसमें पूरे देश के प्रति निष्ठा थी। हर नेता अपनी रियासत बचाने में लगा रहता था। जैसे रानी लक्ष्मीबाई ने कहा था– "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी।" इस वाक्य में उनका पूरा तेज झलक रहा है, लेकिन साथ ही इस भावना की भी झलक मिल रही है कि उन्होंने केवल झाँसी की बात की थी, पूरे देश की नहीं। यह अलग बात है कि झाँसी छिन जाने के बाद उन्होंने स्वयं को पूरे देश की स्वतंत्रता के लिए समर्पित कर दिया था। उन्होंने तो झाँसी छिन जाने के बाद आत्महत्या की बात सोची थी लेकिन एक वृद्ध सरदार ने उन्हें रोककर कहा,

> "महाराज आप ज़रा शान्त हों। ईश्वर ही शहर पर यह दुःख लाए हैं, मनुष्य उसका कोई इलाज नहीं कर सकता। ... यहाँ आत्महत्या करके पाप संचय करने की अपेक्षा युद्ध में स्वर्ग जीतना उत्तम है। इसलिए आप ज़रा भी दुःख न करें स्वस्थ चित होकर स्नान-भोजनादि करें और रात में शत्रुओं की आँखों में बत्तियाँ जलाकर बाहर चलने की तैयारी करें।"[33]

इसके बाद से रानी लक्ष्मीबाई झाँसी से बाहर युद्ध में सक्रिय हो गईं। उसी तरह कुँवर सिंह ने भी बिहार का नेतृत्व किया, अपूर्व वीरता का प्रदर्शन किया लेकिन पूरे देश की बात उन्होंने भी नहीं सोची थी।

झाँसी की रानी के कथन से एक और बात का पता चलता है। यह सही है कि रानी ने ब्रिटिश सरकार के पास कई अर्जिया भेजीं लेकिन अगर रानी राजभक्त होतीं तो उन्हें ब्रिटिश सरकार का हर फैसला मंजूर होता। ऐसे में झाँसी के अधिगृहीत हो जाने का भी विरोध नहीं करतीं। अपनी झाँसी के प्रति उनका लगाव देशभक्ति का ही लघु रूप था।

यदि आम जनता की बात की जाए तो उन्हें यह पता नहीं था कि 'दिल्ली' क्या है और कहाँ है? वे अपने सीमित क्षेत्र को ही सब कुछ मानती थी। उस क्षेत्र की रक्षा के लिए जरूरत पड़ने पर अपनी जान की बाजी लगा देती थी। क्रांति के लिए एक केन्द्र या संगठन की बात कहीं नहीं दिखलायी देती थी। देश छोटे-छोटे राजों-रजवाड़ों में बँटा हुआ था और सभी अपने-अपने हितों की बात सोचते थे। इस प्रकार हमारी पराजय का बहुत बड़ा कारण 'राष्ट्र की संकल्पना' का अभाव था। इसीलिए हमारा प्रयास एक खंडित प्रयास था। अमृतलाल नागर ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि हमारे नेता बीच-बीच में मिलते रहते थे। यह बात सही है

लेकिन यह प्रयास युद्ध स्तर का नहीं माना जा सकता था। नागर ने भारतीय फौजों को अव्यवस्थित माना है। भारतीय फौजें प्रशिक्षित नहीं होती थीं, इसीलिए उनका केवल भीड़ की तरह असंगठित होना स्वाभाविक ही था। हमारे सिपाही अधिकतर किसान थे। उनका मुख्य काम खेती-बाड़ी था। वे केवल युद्ध के समय अपने शासक के बुलाने पर मरने और मारने जाते थे। बाकी समय उन्हें युद्ध की करगुज़ारियों से कोई सरोकार नहीं होता था। इसीलिए अगर 1857 की क्रांति के बारे में कहा जाता है कि इसका असफल होना तय था तो गलत नहीं कहा जाता है। सही दिशा में किया गया प्रयास ही सफल होता है। बिना योजना के केवल जोश के सहारे युद्ध नहीं जीता जा सकता है।

जनता की समझ 'राष्ट्र की संकल्पना' को समझने लायक विकसित नहीं थी। अधिकतर जनता अशिक्षा और बदहाली में जी रही थीं। उनके लिए उनका राजा अन्नदाता होता था। उन्हीं के प्रति निष्ठा दिखाना वे अपना परम कर्त्तव्य मानती थीं। यह दायित्व शासक वर्ग और नेताओं का था कि वे अपनी जनता में 'देश' और 'राष्ट्र' की चेतना जगाएँ। वही भाव देशभक्ति के रूप में फलीभूत हो सकता था। नायक का कार्य ही होता है कि वह अपनी क्षमता से संगठन करें और अपनी सेना की चेतना से प्रवाह को उचित दिशा प्रदान करें। इस संबंध में 1857 की क्रांति का नायकत्व कमज़ोर पड़ता है।

अमृतलाल नागर ने विष्णुभट्ट गोड्से के 'माझा प्रवास' का 'आँखों देखा गदर' नाम से अनुवाद किया है। उसमें भी विष्णुभट्ट ने अपना और अपने चाचा के अनुभव का जिस प्रकार वर्णन किया है उसमें कहीं भी जनता में देश के प्रति निष्ठा का पता नहीं चलता है। इतना अवश्य है कि उनकी शासकों के प्रति निष्ठा अखण्ड होती थी और उसे देशभक्ति में बदला जा सकता था। नागर ने इस अनुवाद में बताया है कि उसमें गोड्से ने आम जनता की नज़र से 1857 की क्रांति को देखा है। जनता अपने शासक के प्रति निष्ठा जरूर रखती है पर वह युद्ध नहीं चाहती है। गोड्से के अनुसार राजा और सामंत से अंग्रेजों की लड़ाई में आम जनता मजबूरी में शरीक हुई थी। प्रजा केवल युद्ध में होने वाले नुकसान की साझीदार थी, आम राजा-नवाबों के खजाने में जमा होता था। ऐसी स्थिति में जनता में निर्लिप्तता आ जाना स्वाभाविक हैं इसीलिए जनता की मनःस्थिति 'कोऊ नूप होय हमैं का

हानी' वाली थी। गदर के बारे में अधिकांश जनता का दृष्टिकोण तटस्थ और स्वतंत्र रूप से बना हुआ था। इतना अवश्य था कि जनता के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा और भय था। इसीलिए जनता चाहती थी कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो जाए। लेकिन उनमें स्वतंत्र्य चेतना पूरी तरह पनपी नहीं थी।

कानपुर में हार के बाद नाना साहब ने ब्रह्मावर्त्त जाकर पुनः सैन्य संगठन का निर्णय लिया था। उनकी प्रजा उनके साथ जाना चाहती थीं। इससे पता चलता है कि जनता की नाना साहब के प्रति निष्ठा थी। अगर नाना साहब थोड़ा प्रयास करते तो कानपुर में एक अच्छा सैन्य दल तैयार किया जा सकता था। कानपुर में अगर कोई राजनैतिक परेशानी थी तो किसी और स्थान पर लेकिन उन्हें प्रजा की निष्ठा का देशहित में प्रयोग करना चाहिए था।

1857 की क्रांति में कार्यनीति और नायकत्व दोनों ही अनिश्चित था। नागर ने बेगम हज़रत महल के नायकत्व की प्रशंसा की है। उनका मानना है कि बेगम ने लखनऊ से बाहर पूरे अवध का संगठन करने का प्रयास किया था। लेकिन इस प्रयास को हम राष्ट्रीय स्तर का नहीं मान सकते हैं।

अखिलेश मिश्र ने अपनी पुस्तक 'अवध का मुक्ति संग्राम' में इस क्रांति की प्रगतिशील सोच को रेखांकित किया है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है कि लार्ड कैनिंग ने 'फूट डालो– राज करो' नीति के तहत मुसलमानों को यह समझाने की कोशिश की थी कि नाना साहब और लक्ष्मीबाई अंग्रेजों को इसीलिए हटाना चाहते हैं ताकि वे यहाँ हिन्दू राज्य स्थापित कर सकें। इसीलिए मुसलमानों को हिन्दूओं का साथ छोड़ देना चाहिए। इस पर बहादुरशाह जफ़र ने कहा था, "हम हिन्दुस्तान में पैदा हुए हैं। हिन्दुस्तान हमारा वतन है। हम हिन्दुस्तान की आजादी के लिए नाना साहब का साथ जरूर देंगे, भले ही हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का राज कायम हो जाये। मुझे पूरा यकीन है कि हिन्दुओं का राज फिरंगियों के राज से बेहतर होगा।"

इस कथन से स्पष्ट है कि जफ़र भारत को एक सूत्र में बाँध कर रखना चाहते थे।

1857 की क्रांति में वाज़िदअलीशाह एक ऐसा नाम है, जिसे एक अय्याश के रूप में पेश किया गया है। हरिकृष्ण देवसरे ने अपने लेख 'स्वाधीनता संग्राम और

विश्वासघात' में नवाब वाज़िदअलीशाह का अलग रूप सामने रखा है। देवसरे ने बतलाया है कि वाज़िदअलीशाह सन् 1847 में तख्त पर बैठे थे। शाह ने अवध के शाासन में कई सुधार किये थे। उन्होंने अपनी सेना को जोरदार ढंग से संगठित करने का प्रयास किया था। अंग्रेज इतिहासकार मेकाफ ने लिखा है–

> "लखनऊ दरबार की समस्त पलटनों को प्रतिदिन सूर्योदय से पहले कवायद के मैदान में जमा हो जाना पड़ता था। नवाब वाज़िदअली शाह स्वयं सूर्योदय से पहले सेनापति की वर्दी पहनकर, घोड़े पर सवार होकर, मैदान में पहुँच जाता।..."[34]

वाज़िदअलीशाह का इस तरह प्रशासन में रुचि लेना अंग्रेजों को नहीं आया। तब वाज़िदअलीशाह के शासन और उसके चरित्र को बदनाम करने के लिए उस पर तरह-तरह के झूठे कलंक लगाकर अनेक पुस्तकें भारतीय लेखकों को रुपये देकर लिखवाई गई। इस कारण शाह का चरित्र हमेशा के लिए धूमिल पड़ गया। आज भी शाह को लोग अय्याश के रूप में ही जानते हैं। अफवाह फैलाने के बाद जैसा कि अंग्रेज चाहते थे, शाह को अपदस्थ करने पर कहीं से भी विद्रोह की आवाज़ें नहीं उठीं थीं।

इस तरह से यह पता चलता है कि कई बार हमारे सामने गलत तथ्य आते हैं। इसीलिए 1857 की क्रांति और उसके उन्नायकों के बारे में सही तथ्यों का पता लगाने के लिए लिखित के अलावे मौखिक साक्ष्यों की भी पड़ताल करनी आवश्यक थी। यही काम नागर ने 'गदर के फूल' में किया है। अमृतलाल नागर ने इस देशभक्ति की भावना को 'गदर के फूल' में समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने 48वीं पल्टन का उल्लेख किया है। यह वही पल्टन थी जिसने अप्रैल में सबसे पहले विद्रोह का स्वर मुखर किया था। उसी ने मई में 7वीं इर्रेगुलर सेना का पत्र पकड़वाया था। इसी तरह 13वीं रेजीमेंट ने तीन अंग्रेज विरोधियों को पकड़वाया था। इसीलिए 12 मई को दोनों पलटनों ने अपनी स्वामिभक्ति के लिए इनाम पाया। फिर उन्हीं दोनों पलटनों ने 30 मई को मड़ियाँव छावनी में विद्रोह किया ओर फाँसी पायी थी।

नागर को ऐसा लगता है कि संभवतः 48वीं रेजीमेंट ने किसी नीतिवश 7वीं इर्रेगुलर का पत्र और क्रांतिकारियों क दूता को पकड़वा दिया था। यह संभव है

क्योंकि अगर क्रांतिकारियों ने विद्रोह का कोई समय निश्चित किया था तो उस समय तक अंग्रेजों के प्रति वफ़ादारी प्रदर्शित करनी आवश्यक थी। इस कार्यनीति की तुलना हम इस बात से कर सकते हैं कि 10 मई को मेरठ में गदर की शुरूआत के बाद भी अवध में पूर्व तिथि 31 मई को ही विद्रोह का निश्चय किया गया था। इसके पूर्व उनकी योजना अंग्रेजों के प्रति पूर्ण निष्ठा दिखाने की थी। इससे अंग्रेजों को उनकी योजना की भनक भी न लगती। जहाँ तक 7वीं इर्रेगुलर सेना के एक हजार तीन सिपाहियों को पकड़वाने का सवाल है तो संभवतः उन्होंने इतनी कड़ी सज़ा की कल्पना नहीं की थी। 7वीं इर्रेगुलर सेना भंग कर दी गई। एक हजार में 120 सिपाही डटे रहे। 120 सिपाहयिों में से कुछ छोड़ दिए गये, तीस को फाँसी की सजा और 40 को आजन्म मशक्कत कैद की सजा दी गई थी। उनका फाँसी देने का तरीका घोर राक्षसी था। सुबह की फाँसी लगाई लाश दिन-भर लटकी रहती, शाम को दूसरा कैदी लटकता, पहले की लाश जिसे दिन-भर चील गिद्ध नोच-नोचकर खाते भी थे, शाम को वहीं दफना दी जाती थी।

अमृतलाल नागर ने जहाँगीराबाद के राजा रज़्ज़ाक बख्श का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उनकी कारगुज़ारियों से यह तय कर पाना मुश्किल था कि उनकी भावना देशभक्ति मानी जाये या राजभक्ति। यहाँ राजभक्ति से तात्पर्य अंग्रेजों के प्रति निष्ठा से है क्योंकि सत्ता उन्हीं के हाथ में थी। नागर का कहना है कि जिस किले में अंग्रेजों को धोखा देकर मारने का प्रबंध हो और जहाँ उनके विरूद्ध षड्यंत्र के कागज़ात मिले हों उसे सहसा देशद्रोही मानना कठिन प्रतीत होता है। फिर अंग्रेजों ने जैसा बदला लिया वैसा किसी साधारण अपराधी से नहीं लिया जाता है। अंग्रेज सिपाहियों ने राजा के महल की स्त्रियों को बेइज्जत किया, राजा रज़्ज़ाक बख्श को अस्सी अन्य व्यक्तियों के साथ फाँसी दी और उनकी लाशें जलते हुए जंगल में झोंक दी थी। इस बदले से तो लगता है कि अंग्रेजों को राजा रज़्ज़ाक बख्श की राजभक्ति पर शक था। राजा का देशभक्तों के साथ हार्दिक सहयोग था। नागर का यह मानना है कि रज्ज़ाक बख्श देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ते हुए मारा गया था।

नागर ने बलरामपुर के नरेश के लिए लिखा है कि वह देश के प्रति गद्दार निकले। उन्होंने पूरी तरह अंग्रेज़ों का साथ दिया था। गज़ेटियर में लिखा है–"जब

गदर आरंभ हुआ, तब इस भाग के सामन्तों में अकेले वही ऐसे थे, जिनकी आस्था कभी न डिगी तथा जो ब्रिटिश सत्ता को सदा सहयोग देते रहे।"[35]

उनकी इस आस्था के उपहार-स्वरूप अंग्रेजों ने उनके नाम के साथ कई हुरूफ़ जोड़ दिए और उनके राज में नई जागीर भी जोड़ दी।

नागर ने 1857 की क्रांति के सबल और दुर्बल दोनों पक्षों को प्रकाश में लाया है। इस क्रांति के संबंध में विपिन चंद्र ने लिखा है–"जो चीज़ विद्रोहियों को एक सूत्र में जोड़ती थी, वह थी विदेशी हुकूमत के प्रति घृणा।"[36]

विदेशी हुकूमत के प्रति घृणा की भावना देशभक्ति से ही आ सकती है, राजभक्ति से नहीं। यह अलग बात है कि राजनीतिक दृष्टि और भविष्य के साफ नक्शे के अभाव में इस घृणा का प्रयोग अपने देश को विदेशी सत्ता से मुक्त करने में नहीं किया जा सका। विपिन चन्द्र ने आगे लिखा है कि 1857 की क्रांति विद्रोहियों की देशभक्तिपूर्ण भावना का परिचायक है क्योंकि उनके पास और भी विकल्प मौजूद थे। इसीलिए यह एक प्रगतिशील कारवाई थी।

अयोध्या सिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत का मुक्ति संग्राम' में मौलवी अहमदुल्ला के संबंध में लिखा है कि देशभक्त वह व्यक्ति होता है जो अपनी मातृभूमि की अन्यायपूर्ण नष्ट स्वाधीनता के लिए षड्यंत्र और युद्ध करता है। इस परिपेक्ष्य में क्रांतिकारियों को देखने पर पता चलता है कि सबसे कम-से-कम अपने-अपने क्षेत्रों की स्वतंत्रता के लिए प्रयास किया था।

अयोध्या सिंह का यह मानना है कि इस क्रांति में सिपाही, किसान, सामंत, कारीगर, सेठ-साहूकार, हिन्दू-मुसलमान आदि विभिन्न वर्गों और धर्मों के लोग संग्राम के मैदान में उतरे थे। सब का प्रधान उद्देश्य फिरंगियों का भगाना था। इस कथन से भी भारतीयों में देशभक्ति की भावना की पुष्टि होती है।

निष्कर्षतः हम भारतीय जनता में देशभक्ति की भावना स्वीकार कर सकते हैं। जनता अपने शासकों (छोटे सामंतों) के प्रति निष्ठा रखती थी। उन्हें सत्ता की नीतियों के बारे में ज्यादा कुछ पता नहीं होता था। इसीलिए उनकी राजभक्ति और देशभक्ति एक दूसरे से जुड़ी हुई थी। ऐसी ही स्थिति छोटे सामंतों के साथ भी स्वीकार की जा सकती है। छोटे सामंत शाह या नवाब के प्रति निष्ठा रखते थे। उनका मानना था कि शाह के फैसले देश के हित में होंगे। इसीलिए उसकी भी

राजभक्ति में देशभक्ति की भावना निहित होती थी। हाँ, यही स्थिति शाह या बड़े सामंतों के बारे में नहीं थी। उनमें केवल देशभक्ति होनी चाहिए थी। उनकी राज़भक्ति का तात्पर्य ब्रिटिश सत्ता के प्रति निष्ठा थी। वस्तुतः राजभक्ति में भी निष्ठा सत्ता पर बैठे व्यक्ति के प्रति न होकर राज्य या देश के प्रति होनी चाहिए लेकिन प्रचलित अर्थों में ऐसा होता नहीं है। प्रचलित अर्थों में राजभक्ति का तात्पर्य सत्ता पर आसीन व्यक्ति के प्रति निष्ठा से होता है। इस तरह राजभक्ति और देशभक्ति दोनों अलग-अलग भावना होती है। अंत में यह कहना उचित है कि आम जनता में यह देशभक्ति की भावना प्रगाढ़ थी किन्तु सभी सामंतों में यह भावना समान रूप से नहीं थी। जनता को ऐसे नायकत्व की आवश्यकता थी जो उनके छोटे से क्षेत्र के प्रति निष्ठा को देश के प्रति निष्ठा तक विकास देता। इस प्रकार भारतीयों में देशभक्ति की भावना से इनकार नहीं किया जां सकता बस उसका रूप निश्चित नहीं था। इस संबंध में मौलाना अबुल कलाम आजाद का कथन भी ध्यातव्य है–

> "हिन्दुस्तान उस वक्त सामंतवाद के अंतिम दौर से गुज़र रहा था। सामंती व्यवस्था में वफादारी अपने ठीक ऊपर के शासक के साथ निभायी जाती थी, जो कोई जमींदार या सामंत होता था। राष्ट्र या मुल्क के साथ जुड़ने जैसा जज़्बा वजूद में तब नहीं था।"[37]

इस कथन से भी यही सुनिश्चित होता है कि भारतीयों में निष्ठा की भावना थी भले राष्ट्र की संकल्पना का अभाव हो।

संदर्भ

[1] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल' पृ.56

[2] वही, पृ.30

[3] वही, पृ.43.44

[4] रामविलास शर्मा; 'सन् सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद, पृ.531

[5] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल' पृ.45

[6] वही, पृ.61

[7] सुन्दरलाल; 'सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टिः 'उद्भावना' (सं. अजेय कुमार, अतिथि सं. प्रदीप सक्सेना) अप्रैल-जून 2007, में प्रकाशित पृ.128

[8] वही, पृ.128

[9] प्रभा दीक्षित; 'राष्ट्रीय आन्दोलन था 1857'; 'मीडिया' (सं. शंभुनाथ, अतिथि सं. रवीन्द्र त्रिपाठी) अप्रैल-जून 2007 में प्रकाशित, पृ.30

[10] इरफ़ान हबीब; '1857 का आगमन'; 'उद्भावना' (सं. अजेय कुमार, अतिथि सं. प्रदीप कुमार) अप्रैल-जून 2007 में प्रकाशित, पृ.204

[11] विनायक दामोदर सावरकर; '1857 का स्वातंत्रय समर', पृ.332

[12] महेन्द्र प्रताप; 'अवध और पूर्वांचल में 1857' एक संगठित तथा व्यापक जन-प्रतिरोध, उद्भावना (सं. अजेय कुमार, अतिथि सं. प्रदीप सक्सेना) अप्रैल-जून 2007 में प्रकाशित,पृ.392

[13] विपिन चंद्र, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', पृ.9

[14] विनायक दामोदर सावरकर; '1857 का स्वातंत्रय समर', सावरकर पृ.42

[15] रिज़वान कैसर; 1857 के सन्दर्भ में हिन्दू-मुस्लिम एकता' प्रगतिशील वसुधा–76' (सं. कमला प्रसाद, अतिथि सं. अरूण कुमार) अप्रैल-जून 2007 में प्रकाशित, पृ.130

[16] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल', पृ.58

[17] वही, पृ.15

[18] वही, पृ.225

[19] वही, पृ.5

[20] वही, पृ.13

[21] वही, पृ.39

[22] वही, पृ.79

[23] वही, पृ.126

[24] वही, पृ.164

[25] वही, पृ.203

[26] वही, पृ.170

[27] वही, पृ.218-219

[28] वंदना मिश्र, '1857 : वीरता में किसी से कम न थीं महिलाएँ'; मीडिया (सं. शंभुनाथ, अतिथि सं. रवीन्द्र त्रिपाठी) अप्रैल-जून 2007 में प्रकाशित,पृ.151

[29] R.C. Majumdar, 'The character of the outbreak of 1857', (from 'The 1857 Rebellion - Editor Bishwamoy Pati) P.N. 39

[30] P.C. Joshi, (Writer & Editors), '1857 in our History (From : 'Rebellion 1857' A Symposium'), p.138

[31] अमृतलाल नागर; 'गदर के फूल', पृ.30

[32] विपिन चंद्र; 'आधुनिक भारत' (रा.शै.अनु.प्रशि.प.,) पृ. 109-110

[33] अमृतलाल नागर (अनु.); 'आँखों देखा गदर', (अनुवाद विष्णुभट्ट गोड्से लिखित, 'माझा प्रवास' का, पृ. 77

[34] हरिकृष्ण देवसरे; 'स्वाधीनता संग्राम और विश्वसघात'; 'आजकल' (सं. योगेन्द्र दत्त शर्मा, सहा. सं. सीमा ओझा) मई 2007 में प्रकाशित, पृ.73

[35] गज़ेटियर

[36] विपिन चन्द्र; 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', पृ. 8

[37] मौलाना अबुल कलाम आज़ाद; '1857 : नये नज़रिये से देखने की जरूरत'; 'नया पथ' (सं. मुरली मनोहर प्र. सिंह, चंचल चौहान) मई 2007 में प्रकाशित, पृ.9

तीसरा अध्याय

इतिहास के आईने में 'गदर के फूल'

(i) 'गदर के फूल' में इतिहास का प्रयोग

(ii) ऐतिहासिक साक्ष्यों और घटनाओं का विश्लेषण

(iii) कथ्य के प्रस्तुतीकरण में इतिहास सहायक या बाधक

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' की रचना ऐतिहासिक घटनाओं के इर्द-गिर्द फैली हुई जनश्रुतियों, किंवदन्तियों एवं वार्ताओं के आधार पर की है। नागर ने वाचिक परम्परा के इतिहास को बहुत महत्त्व दिया है। उन्होंने यह महसूस किया था कि सिर्फ लिखित इतिहास के द्वारा पूरा सच प्रकाश में नहीं आ सकता है। वैसे भी किसी एक स्रोत पर पूर्णतया निर्भर रहने की बजाय विविध स्रोतों से प्राप्त तथ्यों से सही बात का पता लगाना आसान हो जाता है। 'गदर के फूल' के संदर्भ में तीन बातें विचारणीय हैं–

i) 'गदर के फूल' में इतिहास का प्रयोग किस रूप में हुआ है?

ii) अमृतलाल नागर ने ऐतिहासिक घटनाओं और साक्ष्यों का विश्लेषण किस तरह किया है?

iii) इतिहास के प्रयोग ने कथ्य प्रस्तुतीकरण में सहायता पहुँचायी है या मुश्किल पैदा की है?

ध्यातव्य है कि 'गदर के फूल' एक साहित्यिक कृति है, ऐतिहासिक नहीं। इसीलिए अमृतलाल नागर को इस बात की पूरी स्वतंत्रता थी कि वे आवश्यकतानुसार तथ्य का विस्तार या संकोच कर लें। हाँ, इस क्रम में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि नागर ने तथ्यों के साथ कोई छेड़खानी तो नहीं की है? ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित किसी भी रचना में तथ्य की सत्यता सबसे पहली शर्त्त होती है। फिर उसके प्रस्तुतीकरण की बात आती है कि कहीं लेखक ने तथ्यों पर अपने विचारों का बेवज़ह आरोप तो नहीं कर दिया है। इतिहास हमारे जीवन का हिस्सा है। इसीलिए यह बहुत आवश्यक है कि जिन ऐतिहासिक तथ्यों ने जनता के मानस में अपना स्थान सुनिश्चित कर लिया है उससे अलग तथ्य उचित प्रमाण के साथ ही सामने रखे जाएँ। नागर ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है। इसीलिए उन्होंने बाबा राम सनेही के 1857 की क्रांति का नायक होने और नाना साहब का कैलासन के बाबा होने का खंडन पूरे प्रमाण के साथ किया है। इसी तरह जब वे यह सुनिश्चित करते हैं कि बेगम का नेपाल जाने का मार्ग सीतापुर होकर था तो उसके लिए भी वे प्रमाण देते हैं। 'गदर के फूल' की एक खास बात यह भी है कि इसमें नागर ने ऐतिहासिक घटनाओं और साक्ष्यों का बहुत करीने से विश्लेषण करते हुए अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। इस रचना में नागर ने

जनसाधारण के उन किस्सों को भी स्थान दिया है जिसमें कोई प्रचलित नायक नहीं था। इन कहानियों द्वारा नागर ने जनसाधारण की मनःस्थिति और सोच का पता लगाया है। नागर का मानना है कि किसी भी क्रांति में जनता की बहुत बड़ी भागीदारी होती है। इसीलिए उनके सोच की दिशा को सुनिश्चित करना भी आवश्यक था।

(i) 'गदर के फूल' में इतिहास का प्रयोग

अमृतलाल नागर ने यह महसूस किया था कि 1857 की क्रांति को भारतीय दृष्टिकोण से देखने की महती आवश्यकता है। इस विषय पर जितनी भी ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी गई हैं; उनमें अधिकांश बिटिश दृष्टिकोण से प्रभावित हैं या फिर उनके प्रति सहानुभूति रखती हैं। 1857 की क्रांति के अर्द्धशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित सुकुमार सेन की पुस्तक 'अठारह सौ सत्तावन' में ब्रिटिश दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इतना ही नहीं है कि रचनाकार ने ब्रिटिश साक्ष्यों और स्रोतों का प्रयोग किया है बल्कि उसने अधिकतर ब्रिटिश सरकार के कदम को न्यायसंगत ठहराया है। इसी तरह मजूमदार और पी.सी.जोशी जैसे विख्यात इतिहासकारों और अन्य कई इतिहाकारों ने ब्रिटिश दृष्टिकोण से सत्तावनी क्रांति को देखा हैं जोशी ने तो इस क्रांति के कुछ सबल पक्षों पर भी ध्यान दिया है पर मजूमदार ने 1857 की क्रांति के साथ पूरी निर्दयता बरती है।

भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास में सबसे पहला नाम बंगला इतिहासकार रजनीकांत गुप्त का आता है। उन्होंने अपने इतिहास ग्रंथ 'सिपाही युद्धेर इतिहास' (सिपाही युद्ध का इतिहास) में सिपाहियों के विद्रोह, बांग्ला मध्यवर्ग और शेष भारतीयों की राजभक्ति को सशक्त रूप से उभारा है। भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास में सावरकर के इतिहास ग्रंथ का '1857 का स्वातंत्र्य समर' महत्त्वपूर्ण है। यह पुस्तक मूलतः मराठी में लिखी गयी थी। यह पुस्तक देशभक्त क्रांतिकारियों की 'गीता' बन गई थी। यद्यपि सावरकर पर धार्मिक होने का आरोप लगाया गया था तथापि इस पुस्तक का अपना महत्त्व है। इसमें पहली बार 1857 की क्रांति को स्वतंत्रता संग्राम माना गया था। इसके पहले वरिष्ठ इतिहासकार आर.

सी. मजूमदार ने उसे 'सिपाही विद्रोह' कहा और उनके शिष्य एस. बी. चौधरी ने उसे 'जन विद्रोह' कहा था। इसी तरह भारत सरकार ने विवाद से बचने के लिए इतिहासकार एस.एन. सेन द्वारा लिखित पुस्तक में केवल '1857' जैसा शीर्षक अपनाया, जिससे उनके मत के बारे में कुछ भी सुनिश्चित नहीं किया जा सके। अर्थात् सावरकर के पहले 1857 को स्वतंत्रता संग्राम किसी ने नहीं कहा। यह कहना गलत न होगा कि ब्रिटिश सरकार के सत्ता में रहते किसी की भी ऐसी हिम्मत नहीं हुई थी। इसीलिए धर्म को महत्त्व देना अगर सावरकर की कमी मान भी ली जाए तो भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस पुस्तक ने जनता में नया जोश और आत्मसम्मान भरा था।

यद्यपि अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' को एक साहित्यिक कृति के रूप में लिखा है तथापि इतिहास की पृष्ठिभूमि हमेशा रचना के साथ बनी रही है। वैसे तो नागर ने वाचिक परम्परा के इतिहास का अधिक प्रयोग किया है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि लिखित साक्ष्य सिरे से गायब है। उन्होंने देवीदत्त शुक्ल के 'अवध के गदर का इतिहास' सुकुमार सेन के 'अठारह सौ सत्तावन', मजूमदार के इतिहास और अवध गज़ेटियर का कई बार उल्लेख किया है। यह इस बात का संकेत है कि नागर ने केवल हवाई बातें नहीं की है। उनके सामने गदर से संबंधित हर बात का ठोस आधार उपस्थित है।

नागर ने जिस वाचिक परम्परा के इतिहास का प्रयोग किया है उसके महत्त्व को कई और विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। नित्यानंद तिवारी के अनुसार,

> "लोकगीतों की पैठ इतनी गहरी होती है कि वह इतिहास की सार वस्तु को अपनी लपेट में ले लेता है। 1857 के विद्रोह के सिलसिले में जितने लोकगीत रचे गए, उनमें से किसी में अंग्रेज़ी शासन की प्रशंसा या उसे स्वीकार योग्य नहीं माना गया है। अंग्रेजों के प्रति व्यापक रोष उनकी विशेषता है।"[1]

इतिहासकार डी.एन. त्रिपाठी ने अपने लेख '1857 का इतिहास विमर्श' में लिखा है–

> '1857 के उभार का राष्ट्रवादी, साम्राज्यवादी और प्राच्यवादी चित्रण किया गया है, लेकिन 1857 में सचमुच क्या घटा था, यह समझने के लिए स्थानीय स्रोतों और मौखिक इतिहास को जानना जरूरी है।"[2]

'पाहीघर' (कमलाकांत त्रिपाठी) के संबंध में चंचल चौहान ने लिखते हुए लोकगीतों की बात की है। उनके अनुसार,

> "विद्रोह की सफलता के लिए जिस तरह के आधुनिक संगठन और विचारधारा और टेक्नॉलाजी (असलाह) की ज़रूरत थी, उसका अभाव था। लेकिन उसकी असफलता से उसकी प्रासंगिकता कम नहीं हो जाती। भारतीय जनमानस में उसमें शहीद हुए वीरों की छवियाँ अंकित हो चुकी थीं, जिन्हें लोगों ने अपने लोकगीतों में इसीलिए रचा था, क्योंकि उन बलिदानों से आज़ादी की नई चाह पैदा हुई थी, जिसके बगैर आधुनिक स्वाधीनता संग्राम संभव ही नहीं होता और बाल गंगाधर तिलक का स्वराज का नारा या हसरत मोहनी का संपूर्ण स्वराज्य का नारा भारत में नहीं गूँजता।"[3]

यही बात नागर की कृति 'गदर के फूल' में भी नज़र आती है। जिस प्रकार अवध के क्षेत्रों में वहाँ के नायकों की वीरता का बयान लोकगीतों में मिलता है, उससे सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि किस प्रकार 1857 के उन्नायक जनता में जोश भरते थे। उनकी वीरता जनता में स्वातंत्र्य चेतना जगाने का काम करती थी।

लोक-चेतना में 1857 की क्रांति ने अपनी खास जगह बनायी है। यद्यपि बहादुरशाह ज़फ़र ने क्रांति में बहुत बड़े योद्धा की भूमिका नहीं निभाई तथापि उनके शेरों-शायरी में उस समय की स्थिति का अच्छा वर्णन मिलता है। उन रचनाओं से जनता में आत्मगौरव का भाव भरता है। जैसे एक अंग्रेज अधिकारी ने बहादुरशाह ज़फ़र को निम्नलिखित शेर लिख कर भेजा–

> "दमदमे में दम नहीं ख़ैर मांगो जान की।
> ऐ ज़फ़र ठंडी पड़ी अब तेग हिन्दुस्तान की।।'

इसके जवाब में ज़फ़र ने लिखा–

> "गाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
> तख्ते लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।"

जब हम 'गदर के फूल' में इतिहास के प्रयोग पर विचार करते हैं तो यह देखना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि नागर ने इतिहास को वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया है या तोड़-मरोड़कर। सर्वप्रथम हम गज़ेटियर के प्रयोग पर विचार करते हैं। नागर की यात्रा की शुरुआत बराबंकी से हुई थी। गज़ेटियर में लिखा है कि जून 1857 में

सर्वप्रथम बाराबंकी के दरियाबाद क्षेत्र से क्रांति की शुरूआत हुई थी। नागर ने भी यही माना है। उस समय दरियाबाद जिले का मुख्यालय था। बाराबंकी के बारे में गज़ेटियर लिखता है कि वहाँ के ताल्लुकेदारों ने लखनऊ की रक्षा और बिरजीस क़दर का राज कायम करने में बेगम हज़रत महल की पूरी मदद की थी। यह अलग बात है कि लखनऊके पतन के बाद उन्हें तितर-बितर हो जाना पड़ा था। नागर ने बाराबंकी के ताल्लुकेदारों के बारे में गज़ेटियर के हवाले से लिखा है–

> "गज़ेटियर लिखता है कि बाराबंकी जिले के ताल्लुकेदार अंग्रेजों के विरूद्ध होकर भी प्रायः मौन थे। यह सच है परन्तु अन्य जिलों से आए हुए सामंतों और उनकी सेनाओं की प्रेरणादायिनी जोशीली कारगुज़ारियों को देखकर क्या बाराबंकी जिले का जनसाधारण अछूता बच गया होगा?"[4]

नागर द्वारा गज़ेटियर के प्रयोग से ऐसा लगता है कि उन्होंने लखनऊ के पतन के बाद की स्थिति पर ध्यान दिया है। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि बाराबंकी जिले के ताल्लुकेदार अंग्रेजों के विरूद्ध होकर भी प्रायः मौन थे।

गज़ेटियर ने यह भी लिखा है कि लखनऊ पर कब्जा करने के बाद ब्रिटिश सेना नवाबगंज अर्थात् बाराबंकी पर केन्द्रित हो गयी थी। वहाँ निर्णायक युद्ध हुआ और नवावगंज पर ब्रिटिश सेना के अधिकार के बाद रायबरेली, सुल्तानपुर, गोंडा, बहराइच और फ़ैजाबाद की ओर जाने वाले रास्तों पर बिटिश सेना का अधिकार हो गया था। इस तरह अब अंग्रेज़ों के लिए क्रांति पर नियंत्रण रखना और आसान हो गया। बाराबंकी में भिठौली के राज गुरु बख्श सिंह ने अंत तक गदर में हिस्सा लिया था। इसके कारण उन्हें अपना सम्पूर्ण राज्य खोना पड़ा था।

अवध पर फरवरी, 1856 ई. में ब्रिटिश सरकार का कब्ज़ा हो गया था। फ़ैजाबाद को जिला और मण्डल का मुख्यालय बना दिया गया था। उस समय सिपाहियों की स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। वे फैजाबाद और अपने स्थानीय सरदारों के बीच झूलने लगे थे। मानसिंह जैसे ताल्लुकेदार उस समय केवल अपने हित-साधन के बारे में सोचने लगे थे। नागर ने भी मानसिंह को अपने हित-साधन में लीन माना है। उस समय मानसिंह जैसे कुछ ताल्लुकेदार स्वतंत्र निर्णय ले सकने की स्थिति में आ गये थे। राजा मानसिंह ने उस स्थिति का पूरा फायदा उठाते हुए ब्रिटिश अधिकारियों को शरण दी। लेकिन उनके बारे में यह निश्चय करना मुश्किल

था कि वे अंग्रेजों के साथ हैं या क्रांतिकारियों के अपने हित के अनुसार वे क्रांतिकारियों या अंग्रेजों का साथ देते थे। कुछ अपवादों के अलावा बाकी ताल्लुकेदारों ने अवध दरबार को अंग्रेजों के खिलाफ पूरा सहयोग दिया था।

जहाँगीराबाद जिले के बारे में गज़ेटियर में लिखा है कि वहाँ के राजा ने अंग्रेजों के प्रति अपनी शत्रुता पूरी तरह घोषित कर दी थी। नागर ने भी अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों का विवरण देते हुए यही निष्कर्ष निकाला है कि वहाँ के राजा रज़्ज़ाक बख्श क्रांतिकारियों के साथ थे।

सुल्तानपुर के बारे में गज़ेटियर और नागर के विचार हू-ब-हू मिलते हैं। दोनों ने सुल्तानपुर में संघर्ष का आरंभ 9 जून, 1857 ई. को माना है। आगे दोनों स्रोतों से हमें पता चलता है कि उस संघर्ष की शुरूआत ब्रिटिश कर्नल फ़िशर को सेना के एक सिपाही द्वारा गोली मारने से हुई थी। इसी क्रम में गिबिन्स और कुछ अधिकारी भी मारे गये थे। उनके घरों को जला दिया गया। सुल्तानपुर के निज़ाम मेंहदी हसन ने अंग्रेजों के खिलाफ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हसनपुर में उसका मुख्यालय था। फ़ैजाबाद के अधिकांश ताल्लुकेदारों ने मेहंदी हसन की पूरी सहायता की थी। 23 फरवरी 1858 को क्रांतिकारियों ने उचित सैन्यबल और देशभक्ति के साथ सुल्तानपुर की लड़ाई लड़ी थी। यह अलग बात है कि इसका कोई इच्छित परिणाम नहीं मिला था।

गज़ेटियर में लिखा है कि अवध के प्रान्त या कार्यक्षेत्र का ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा संयोजन किये जाने पर गोंडा-बहराइच कमिश्नरी में गोंडा एक स्वतंत्र जिला बन गया। गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह ने 1857 की क्रांति का नेतृत्व किया था। नागर ने अपनी कृति 'गदर के फूल' में उन्होंने उल्लेख किया है कि गज़ेटियर में गोंडा के बरवारों का महात्म्य उन्होंने पढ़ा था। इसी तरह तुलसीपुर की रानी राजेश्वरी देवी की वीरता का उल्लेख भी उन्होंने गज़ेटियर के आधार पर किया है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि अंत में तुलसीपुर की रानी बेगम के साथ नेपाल भाग गई थी।

गज़ेटियर के अनुसार, बहराइच जिले में भी अवध की तरह संयोजन के फलस्वरूप क्षेत्रों का विकास हुआ। वहाँ संघर्ष का स्वरूप ने ताल्लुकेदारों के आन्दोलन का रूप ले लिया था। वहाँ के भू-स्वामियों ने स्थिति का फायदा उठाया।

उन्होंने अपने प्रदेशों को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। उन्हीं प्रमुखों और नेताओं ने विद्रोह का झंडा फहराया। चहलारी के ताल्लुकेदारों ने पूरी ईमानदारी से ब्रिटिश सरकार का विरोध किया था। 27 नवम्बर, 1857 ई. को नवबगंज या बाराबंकी की लड़ाई में उन्होंने भाग लिया ओर मारे गये। इसी तरह का उदाहरण धौरहरा और भिठौली ने भी प्रस्तुत किया था। चर्दा के राजा ने क्रांतिकारियों का साथ दिया था। लखनऊ पर अंग्रेजों का आधिपत्य होने के बाद बौंडी के राजा ने बेगम हज़रत महल को अपने किले में शरण दी थी। नागर के विवरण गज़ेटियर से मेल खाते हैं। उनका कहना है कि बलरामपुर के नरेश को छोड़कर बहराइच जिले के अन्य क्षेत्र अंग्रेजों के खिलाफ रहे थे। उन सारे ताल्लुकेदारों के गाँव ज़ब्त कर लिये गये। नागर भी इस तथ्य से सहमत हैं।

बहराइच जिले के अन्तर्गत आने वाले बौंडी और रेहुआ के राजवंशों के बीच वैमनस्य था। नागर ने प्रसंगवश उसका वर्णन कर भारत की तत्कालीन स्थिति को बतलाया है। नागर ने अपनी प्रतिभा से यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी कि भारत एक राष्ट्र क्यों नहीं बन सका। उन्होंने लिखा है कि सभी रैकवार अपनी श्रेष्ठता साबित करने और दूसरे की रण-पूजा में ही लगे रहते थे। उन्हें भारत की स्वतंत्रता में कोई ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी।

गज़ेटियर में लिखा है कि 1857 की क्रांति में सीतापुर की सहभागिता अचानक ही हो गयी थी। 30 मई 1857 ई. को सिपाहियों ने लखनऊ में विद्रोह किया। सेना की एक टुकड़ी सीतापुर की ओर बढ़ी। अवध के अन्य हिस्सों में विद्रोह फूटने का समाचार सीतापुर में भी अपना प्रभाव दिखलाने लगा था। अंग्रेजों के एक दल ने मितौली के राजा लोनेसिंह के वहाँ शरण ली थी। राजा ने बाद में उस दल को लखनऊ भेज दिया था। चिनहट में क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश सरकार से 30 जून 1857 को युद्ध किया था। उस युद्ध में क्रांतिकारियों की जीत हुई थी। उसे उनमें असीम उत्साह का संचार हुआ था। यह अलग बात है कि उस उत्साह को सही साँचे में ढाल कर भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयोग नहीं किया जा सका। नागर ने एक पंक्ति में उस उत्साह की समाप्ति को व्यक्त कर दिया है–"नेतृत्वहीन जन-जोश यों ही भस्मासुर होकर आत्मसंहार करता है।"[5]

मितौली के राजा लोनेसिंह के वहाँ अंग्रेजों के शरण लेने और उनके साथ लोनेसिंह के धोखे का उल्लेख नागर ने किया है। नागर ने लिखा है कि लोनेसिंह सीतापुर का न होकर संभवतः खीरी जिले का था। यही तथ्य गज़ेटियर से भी मालूम होता है। गज़ेटियर में लिखा है कि अंग्रेज भाग कर खीरी गये थे जहाँ उन्हें लोनेसिंह से शरण मिली। संभवतः मितौली ग्राम सुल्तानपुर जिले में न होकर खीरी जिले में आता है।

गज़ेटियर के अनुसार सीतापुर जिले से अंग्रेजों के अधिकार में जाने वाला अंतिम गढ़ खैराबाद था। अवध सरकार के अधीन अंतिम नाज़िम हरप्रसाद ने पूरी क्षमा के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध मोर्चा बनाया। इस संघर्ष में उन्होंने बेगम से वफ़ादारी निभाई। मार्च 1858 ई. में लखनऊ के पतन के बाद भी उन्होंने बेगम का साथ नहीं छोड़ा। अन्य ताल्लुकेदारों ने बेगम का साथ छोड़ दिया और भू-राजस्व देने से भी इनकार कर दिया लेकिन हरप्रसाद नाज़िम बेगम के साथ रहे। नागर के अनुसार, ख़ैराबाद का महत्त्व मुंशी हरप्रसाद नाज़िम और मौलवी फज़लहक के कारण बढ़ जाता है।

रायबरेली के संबंध में गज़ेटियर में मिलता है कि 1 जून 1857 ई. तक रायबरेली के लोगों का क्रांति में हिस्सा लेने का कोई विचार नहीं था। 10 जून तक रायबरेली के नागरिक बिटिश शासन के स्थानीय अमलों का आदेश मानते रहे। बाद में परिस्थितियाँ बदलीं और सिपाही तथा ताल्लुकेदार ब्रिटिश शासन के विरूद्ध हो गये। उसमें शंकरपुर के राणा बेनीमाधव का नाम महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने उत्साह के साथ ब्रिटिश शासन का विरोध किया था। उस जले के निवासियों ने क्रांतिकारियों का साथ दिया था। उन्होंने रायबरेली में मेज़र गॉल को मार डाला था। 17 अगस्त 1857 ई. को राणा बेनीमाधव को जौनपुर और आजमगढ़ का प्रशासक नियुक्त किया गया था। उसके बाद उन्होंने ब्रिटिश शासकों को देश से बाहर निकालने का आह्वान किया। नागर ने भी जिस प्रकार राणा की वीरता और साहसपूर्ण कारनामों का वर्णन किया है उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि वे गज़ेटियर में उल्लिखित घटनाओं से सहमत हैं। हालांकि इस संबंध में उन्होंने गज़ेटियर का उल्लेख नहीं किया है। हाँ, उन्होंने वाचिक परम्परा में मौजूद ऐतिहासिक साक्ष्यों का प्रयोग अवश्य किया है।

गज़ेटियर में उन्नाव में क्रांति के आरंभ होने का वर्णन कुछ इस प्रकार मिलता है – कानपुर में 4 जून को इस क्रांति के आरंभ की सूचना फैली थी। उसी दिन उन्नाव में भी वह सूचना पहुँच गयी। जून में उन्नाव में विद्रोह का स्वर बुलंद हो गया था। जून के अंत तक कप्तान इवान को लखनऊ भाग जाना पड़ा। इसके बाद जिले का शासन क्रांतिकारियों के हाथ मे आ गया। लेकिन ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ किसी व्यवस्थित लड़ाई की स्थिति नहीं दिखती है। आरम्भ में स्थानिक भू-स्वामियों और ताल्लुकेदारों में आम जनता में निष्ठा पैदा करने लायक संगठन शक्ति नहीं दिखलायी पड़ती है। लेकिन कुछ समय बाद ही बहुत सारे स्थानीय प्रमुख ख़ासतौर पर राव रामबख्श (डौंडिया खेड़ा), देवीबख्श (पूर्वा-उन्नाव-रानबिरपुर) और मनसव अली (रौशलबाद परिवार) ब्रिटिश सरकार के खिलाफ उठ खड़े हुए। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को लड़ने और दुःखद अंत के लिए बाध्य किया था। क्रांतिकारियों द्वारा अंग्रेजों को सफलता पूर्वक उन्नाव से हटा दिया गया। नागर उन्नाव और हरदोई नहीं जा पाये थे और उन क्षेत्रों के बारे में उन्होंने गज़ेटियर का उल्लेख नहीं किया है। लेकिन उनकी सूचनाएँ गज़ेटियर से मेल अवश्य खाती है। जैसे – नागर ने लिखा है कि उन्नाव में क्रांति का नेतृत्व राव रामबख्श ने किया था। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि उन्नाव ने सबसे बाद में अपनी तलवार म्यान में रखी। गज़ेटियर में लिखा है कि 1857 की जुलाई के अंतिम सप्ताह में अंग्रेज उन्नाव जिले से होकर गुज़रे थे। यह कथन नागर के विवरण से मेल खाता है।

इसी तरह हरदोई के बारे में भी नागर का विवरण उनके अध्ययन पर आधारित है, यात्रा पर नहीं। हरदोई जिले में उन्हें तीन प्रमुख नामों का पता चला रोइया के राजा नरपतिसिंह, संडीला के चौधरी हशमत अली और बेरूआ के ठाकुर गुलाब सिंह। चौधरी हशमत अली के बारे में नागर ने 'सवान-हात-ए-सलातीन-ए-अवध' में पढ़ा था। इसी तरह उन्होंने रोइया के नरपति सिंह के बारे में दैनिक 'नवजीवन' और बेरूआ के गुलाब सिंह के बारे में 'स्वतंत्र भारत' में प्रकाशित बुद्धि सागर वर्मा और श्री वचनेश त्रिपाठी के लेखों में पढ़ा था।

लखनऊ के बारे में नागर ने गज़ेटियर के हवाले से लिखा है कि 11 फरवरी सन् 1856 ई. को अवध को कम्पनी राज्य में मिलाए जाने की घोषणा हुई थी।

रमेशचन्द्र मजूमदार ने सत्तावन की क्रांति को असंगठित और अनियोजित माना है। नागर ने अवध के संबंध में इस बात से असहमति जताई है। लेकिन उन्होंने लिखा है–"हमारे सत्तावनी पुरखे अपनी ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रति जहाँ अत्यधिक गम्भीर थे वहीं दूसरी ओर संगठन की व्यापकता के प्रति लापरवाह भी थे।"[6]

इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि संगठन के प्रति लापरवाही का जिक्र करके नागर ने मजूमदार से कुछ हद तक ही सही सहमति जताई है। इसी तरह नागर ने संगठन के अभाव को भारत की पूरी परंपरा में पराजय का कारण माना है। उनका मानना है कि भारत में वीरों की कमी नहीं रही है लेकिन संगठन का अभाव रहा है। नागर ने लिखा है –

> "उम्दा घड़ी के बेशकीमती पुर्ज़े मौजूद हैं पर वे सुनियोजित रूप से एकत्र और सुसंगठित नहीं हैं.... हमारे देश की यह तस्वीर है। महाराज पुरु से लेकर सन् 1857 ई. तक यही बात दिखलायी देती है।"[7]

इसीलिए नागर ने माना है कि क्रांतिकारियों में स्वाभिमान और सिद्धान्त के लिए मर-मिटने का जोश भरपूर था, पर अपनी कलह में भी कसर न थीं।

इस विषय में विपिन चंद्र के विचार हैं–"यह संभव प्रतीत होता है कि विद्रोह का एक सुनियोजित षड्यंत्र था मगर संगठन पर्याप्त रूप से अभी आगे नहीं बढ़ पाया था कि अकस्मात् विद्रोह हो गया।"[8]

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में इतिहास का प्रयोग किस तरह किया है, यह जानने के लिए बस बात का निश्चय करना भी आवश्यक है कि उनके लिए 'इतिहास क्या है?' यह सही है कि 'गदर के फूल' में नागर इतिहास नहीं लिख रहे थे किन्तु उनके कार्य का ऐतिहासिक महत्त्व है– इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है। ई.एच.कार. का मानना है कि वस्तुतः तथ्य वही होते हैं। यह इतिहासकार पर निर्भर करता है कि वह उन तथ्यों को किस तरह प्रयोग कर क्या प्रतिपादित करता है। लेखक जैसा प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसी के अनुसार तथ्यों का प्रयोग करता है। तथ्यों के संबंध में ई.एच.कार. ने यह भी लिखा है कि तथ्य केवल वे ही नहीं होते जिन्हें इतिहासकार चुनता है बल्कि नए तथ्यों को भी चुना जा सकता है। इसी प्रकार तथ्य शुद्ध रूप में हमारे सामने नहीं आते बल्कि इतिहास के

रंग में रंग कर आते हैं। उन तथ्यों पर इतिहासकार के दृष्टिकोण का प्रभाव होता है। इसीलिए इतिहास को समझने के लिए इतिहासकार के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है। अमृतलाल नागर के 'गदर के फूल' को पढ़कर कहा जा सकता है कि उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को इतिहासकार के व्यक्तित्व के साथ जोड़कर देखा है।

यूँ तो अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में लिखित साक्ष्यों का भी प्रयोग किया है लेकिन किंवदन्तियों और लोक-साहित्य से प्रमाण बटोरना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। ई.एच.कार. का मानना है कि महान इतिहास तभी लिखा जाता है जब इतिहासकार की अतीत दृष्टि समकालीन समस्याओं की अंतर्दृष्टि द्वारा प्रकाशित हो उठती है। वे ही तथ्य ऐतिहासिक बनते हैं जो व्यक्ति के निजी जीवन से सम्बद्ध न होकर सामाजिक जीवन से सम्बद्ध होते हैं। निश्चित रूप से लोक में लंबे समय तक वही तथ्य या व्यक्ति परम्परा बनकर जीवित रहते हें जिनका सामाजिक सरोकार होता है। इस तरह नागर द्वारा की गई किंवदन्तियों और लोक-साहित्य में तथ्यों की खोज की सार्थकता को समझा जा सकता है। नागर ने अपनी यात्रा बाराबंकी जिले से शुरू की थी। वहाँ के वीर नायक बलभद्रसिंह के बारे में शंका व्यक्त की गई थी कि वे अंग्रेजों के मित्र थे। इसीलिए नागर ने अपने आगे की यात्रा में सच्चाई का पता लगाना आवश्यक समझा।

दरियाबाद में अध्यापक तुलसीराम से नागर ने गदर से संबंधित कवित्त सुने। एक कवित्त में राजा मानसिंह के अंग्रेजों से मिलने और चहलारी के राजा ठाकुर बलभद्रसिंह की वीरता की पुष्टि होती है। उन्होंने राजा की वीरता से संबंधित और भी कवित्त नागर को सुनाये। ई.एच.कार का मानना है कि इतिहास के अध्ययन का अर्थ है – उसके कारणों का अध्ययन। इतिहासकार लगातार यह प्रश्न पूछता रहता है कि ऐसा क्यों? इस रूप में देखें तो नागर द्वारा इतिहास के प्रयोग और उसकी सार्थकता को समझना आसान हो जायेगा। नागर ने हर तथ्य के साथ यह जानने का प्रयत्न किया है कि ऐसा क्यों? इस तरह से हम समझ सकते हैं कि नागर ने ऐतिहासिक कृति ने लिखते हुए भी कितना महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काम किया है। इस क्रम में यह भी जानना आवश्यक है कि यह एक सार्वभौमिक सिद्धांत है कि अतीत की घटनाओं को क्रमबद्धता देकर कारण और प्रभाव के क्रम में रखना ही

इतिहास है। एक सच्चा इतिहासकार न केवल कारणों की सूची बनाएगा, बल्कि उन्हें क्रमबद्ध और व्यवस्थित करने की बाध्यता भी महसूस करेगा। इसी आधार पर नागर ने जितने भी इतिहासकारों के विचारों का उल्लेख किया उनको सच्चे इतिहासकार की कसौटी पर कसा है। उन्होंने इस बात का भी हमेशा ध्यान रखा कि इतिहासकार जिन तथ्यों का चयन कर रहा है उसमें उसके व्यक्तित्व का पूरा प्रभाव है या नहीं? इसी तरह लोक में प्रचलित कवित्त और छंद भी रचयिता के व्यक्तित्व और व्यक्तिगत मानदंडो से प्रभावित रहते हैं। इस तथ्य का भी नागर ने ध्यान रखा है।

दरियाबाद से लौटते हुए नागर की मुलाकात रामस्वरूप वाजपेयी से हुई। उनके अनुसार बेगम हज़रत महल बाराबंकी से होकर नेपाल गयी थीं। यह कथन विवादस्पद है। 'बेगमाते अवध के खुतूत' और 'कैसरुलतवारीख' के अनुसार बेगम सीतापुर होकर नेपाल गयी थीं। दोनों जानकारियों में अंतर के कारण नागर ने किसी निष्कर्ष पर पहुँचना उचित नहीं समझा। उन्होंने इस बारे में और जानकारियों प्राप्त करने का निश्चय किया।

लखनऊ में नागर ने दीनदयाल दीक्षित से गदर में भाग लेने वाले पुरखों का इतिहास माँगा। फिर मेलिसन द्वारा बताया गया मार्ग भी रामस्वरूप वाजपेयी के कथन का समर्थन नहीं करता है। बेगम के मार्ग के बारे में नागर ने भवानीशंकर दीक्षित के प्रपौत्र दीनदयाल दीक्षित से लिखित रूप में जानकारी प्राप्त की थी। दीनदयाल दीक्षित ने यह कहानी अपने पितामह महावीर प्रसाद दीक्षित से सुनी थी। कहानी के अनुसार, बेगम हज़रत महल, नाना साहब, राज्य देवीबख्श के साथ भवानीशंकर दीक्षित और उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रयागदत्त भी नेपाल गये थे। अंग्रेज़ी सेना को रोकने के क्रम में तुलसीपुर की रानी वीर-गति को प्राप्त हुई। राजा देवीबख्श का भी साथ छूट गया। नेपाल जाने के रास्ते में बहुत-से साथी स्वर्ग सिधार गये। बेगम और नाना साहब में मतभेद हो गया था। युवराज और अपने साथियों को लेकर बेगम काठमांडू चली गईं। नाना साहब, भवानीशंकर दीक्षित और उनके पुत्र प्रयागदत्त दीक्षित उत्तर पश्चिम के जंगलों की ओर बढ़ते गये थे।

नागर ने बाराबंकी जिले के कुर्सी नामक स्थान में एक बुर्जुग हाजी साहब से मुलाकात की। उन्होंने बताया कि उनकी वालिदा के अनुसार बेगम का मार्ग कुर्सी,

देवा, भयाराही (दर्पण) आदि से होत हुए भिठौला तक है। रामस्वरूप वाजपेयी ने भी बेगम का मार्ग वही बताया था। हाजी साहब की बात उनका समर्थन करती है। बहराइच जिले के बौंडी नामक स्थान में बेगम के एक मार्ग के संबंध में किंवदन्ती मिली। उससे यह पता चला कि बेगम बौंडी निश्चित रूप से आयी थीं। बेगम के नेपाल जाने के मार्ग में अलग-अलग किंवदन्तियाँ हैं। इस अंतर का कारण शायद यह हो कि बेगम को लोग अपने क्षेत्र से जोड़ने में गौरवान्वित अनुभव करते थे। किंवदन्तियों में भिन्नता के कारण नागर ने लिखित साक्ष्य को आधार मानते हुए बेगम का मार्ग सुल्तानपुर से होकर नेपाल तक माना है।

नागर ने बाराबंकी के भयारा में अच्छन साहब के मामा शेख अब्दुल किदवई से मुलाकात की थी। किदवई ने नागर को ज्यारी गाँव के भागू नाई द्वारा अक्सर सुनाया जाने वाला आल्हा सुनाया। उस आल्हे में बलभद्र सिंह की वीरता और अंग्रेजों पर उनकी धाक जमने का वर्णन मिलता है। शेख अब्दुल किदवई ने बताया कि 'हमारी हार की वज़ह यह थी कि हमारी फौज एक बेकायदा भीड़ थी जबकि अंग्रजों के साथ बाकयदा फौजें थीं।' किदवई ने भागू के ख्याल के हवाले से इस बात की पुष्टि की है कि नवाबगंज की लड़ाई में चर्दा और बौंडी के राजा भी बलभद्रसिंह के साथ थे। मगर लड़ाई में सबके पैर उखड़ गये। बस बलभद्रसिंह की वीरता अविचल रही। शेख किदवई ने यह बतलाया कि अवध के बादशाह में किदवईयों की कोई दिलचस्पी नहीं थी। इसी कारण उन्होंने आमतौर पर ग़दर में कोई हिस्सा नहीं लिया था।

अमृतलाल नागर ने जहाँगीराबाद के कोट के राजा रज़्ज़ाक बख्श के बारे में सर होपग्राण्ट के कथन का उल्लेख किया है। सर होपग्राण्ट ने अपनी किताब 'सिपॉय वार' में रज़्ज़ाक बख्श के बारे में लिखा है कि वह बराबर दोतरफा चाल चलता रहा। इसलिए होपग्राण्ट ने ब्रिगेडियर हार्स फोर्ड की कमान में एक सेना उस जंगल और कोट को ध्वस्त करने के लिए भेजी। सेना ने जंगल जला दिया और किला ध्वस्त कर मिट्टी में मिला दिया। नागर ने यह भी सुना था कि अंग्रेज़ी सेना के 'गुरखे' और अंग्रेज सिपाहियों ने महल की स्त्रियों को बेइज्जत किया था। राजा रज़्ज़ाक बख्श को अस्सी अन्य व्यक्तियों के साथ फाँसी दी गयी और उनकी लाशें जलते हुए जंगल में झोंक दी गयी। सर होपग्राण्ट और अपनी सुनी हुई सूचना से

नागर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि राजा रज़्ज़ाक बख्श को देशद्रोही मानना न्यायसंगत नहीं है। नागर ने यह भी लिखा है कि वाज़िदअली शाह ने रज़्ज़ाक बख्श के दामाद फ़रज़न्द अली को जहाँगीराबाद का राजा बनाया था। अपने जीते जी अपने दामाद को जहाँगीराबाद का राजा बनाने वाले शाह के प्रति रज़्ज़ाक बख्श की निष्ठा नहीं हो सकती। इसीलिए नागर ने अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि रज़्ज़ाक बख्श देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयास करते हुए मारा गया था। नागर के पूछने पर एक माल दरोगा ने कहा–

> "हिशटरी की तौ साहब हमैं कछु ख़बर नहीं मगर यह सुना है कि बड़े रज़्ज़ाक बख्श तौ फ़कीर रहैं। रामपुर के महन्त के यहाँ जाय, उर्दू इनके यहाँ आवैं, यही हाल रहा।"[9]

अमृतलाल नागर ने बाराबंकी के कुर्सी नामक स्थान में एक बुर्जुग हाजी साहब से मुलाकात की थी। उन्होंने अपनी माता के हवाले से कुर्सी से लगभग डेढ़ मील दूर काज़ी बाग के पास मितैला तालाब होने की सूचना दी थी। हाजी साहब ने यहाँ अंग्रेजों द्वारा खूब कत्लेआम मचाने के बारे में बताया। हाज़ी साहब के अनुसार मुल्की लोग भी लूट-पाट में शामिल थे। इसलिए अंग्रेजों को आक्रमण का मौका मिल गया। एक दूसरे बुर्जुग खुर्शेद दर्जी के अनुसार, कुर्सी में लड़ाई आनन-फानन में समाप्त हो गयी। लेकिन इतने ही समय में बहुत मार-काट मचायी गयी थी।

नागर को मौलवी साहब नामक एक बुर्जुग से जानकारी मिली कि लखनऊ की हार के बाद बेगमात यात्रा कर कुर्सी आयी थीं। अंग्रेजों के डर से वे गाड़ी भर अशर्फियाँ और अपने जेवरात छोड़कर भागी थीं। मौलवी साहब के कथन से नागर के मन में यह विचार आया कि बेगम हज़रत महल के लिए जिस मार्ग की बात की गई है उसमें एक नहीं कई बेगमें होंगी।

बाराबंकी के बलभद्रसिंह के बारे में नागर का कहना है कि उन्हें हमारे स्वनामधन्य इतिहासकारों ने भले भुला दिया हो लेकिन जनता की स्मृति में वे जीवित हैं। नागर इतिहासकारों से निम्नलिखित शब्दों में शिकायत की है–

> "सन् 1857 पर पोथे लिखने वाले हमारे स्वनामधन्य इतिहासकार ने अंग्रेजों और क्लर्क क्लास के बंगालियों की डायरियों के सहारे गदर वालों की क्रूरता, नृशंसता, जघन्यता, पैशाचिकता आदि-आदि इत्यादि न जाने क्या-क्या सूँघ लिया; उसके लिए उनका मस्तक अखिल भारतीय लज्जा के भार से झुक गया। काश कि अंग्रेजों के ही लिखे हुए कुछ ऐसे ही अंश

उन्होंने पढ़ लिये हाते, जिनसे भारतीय संस्कृति और भारत की शान बहुत ऊँची होती है।"[10]

नागर ने 114 वर्ष के वृद्ध साहबदीन से मुलाकात की। उन्होंने चहलारी के राजा के बारे में बहुत-सी जानकारी दी। उन्होंने बलभद्रसिंह की वीरता के बारे में कहा–

"...आदमी एक हाथे म ढाल रोकत हायि, उयि दून्हौं हाथन म कब्जा लिहिन। औरू जैसी बजरा कैसी बाली नाहीं छांटति होय, वैसे अंगरेजन का काटिन। धन्न है परमातमा उनका अइसन प्रानी।"[11]

साहबदीन ने बेगम हज़रत महल के देखा था। उन्होंने बताया कि बेगम 'पतरे' क़द की थीं और किसी से परदा नहीं करती थीं। वे न बहुत ठिंगनी थी, न बहुत लंबी, और गोरी थी। अंत में उन्होंने कहा–"जैस अउरत क सील धरम होत है वइसी रहैं। देउता रहै।"[12]

फ़ैजाबाद में नागर को पं. सूरजकिशन गंजूर ने दो किस्से सुनाये। एक किस्से में उन्होंने बताया कि किस प्रकार एक सिपाही ने अपनी माँ को लूट की सूचना दी थी। उस सिपाही की माँ ने अपने गहने-जेवरों के साथ पड़ोसियों के भी गहनों की सुरक्षा की थी। इस कहानी से उस समय के लोगों की ईमानदारी का पता चलता है। दूसरी कहानी उन्होंने एक अंग्रेज अफ़सर की दो बेटियों की गुम होने की सुनायी। उसमें एक बेटी को एक ब्राह्मण किसान परिवार ने आश्रय दिया और बेटी की तरह रखा और दूसरी बेटी को एक ज़मींदार ने बीबी की तरह रखा। तब उस अंग्रेज अफ़सर ने उस जमींदार की ज़मीन छीनकर ब्राह्मण किसान को दे दी। नागर ने इन कहानियों से यह निष्कर्ष निकाला कि इनसे क्रांति के समय की हलचल भरी स्थिति का पता चलता है। यह भी पता चलता है कि उस समय जनता की मानसिकता कैसी थी। सुविधाभोगी जमींदार ने जहाँ संकट में फँसी लड़की को भी अपनी भोग्या बनाया वहीं किसान परिवार ने लड़की की सहायता की। शायद वह किसान परिवार यह सोच पया हो कि देश की इस स्थिति में बाप से बिछुड़ी लड़की का क्या दोष?

फ़ैजाबाद में नागर को शारद से पता चला कि 1857 की क्रांति में फ़ैजाबाद पीछे नहीं रहा। यद्यपि आकस्मिक कारणवश विद्रोह की शुरुआत मेरठ में हुई तथापि योजना के अनुसार वह शुरूआत फ़ैजाबाद में होनी चाहिए थी। उन्होंने यह भी

जोड़ा कि पूर्व योजना के अनुसार शुरूआत नहीं होने के कारण गदर असफल रहा। शारद के अनुसार मंगल पाण्डे फैज़ाबाद के रहने वाले थे। इस कारण वहाँ के लोग खुद को गौरवान्वित महसूस करते थे। मंगल पांडे को फाँसी दिये जाने के बाद सैनिक छावनियों में ज़बरदस्त विद्रोह प्रारम्भ हो गया। बेगम हज़रत महल ने रानी मानवती (राज मानसिंह की बहन और वाज़िदअलीशाह की एक पत्नी) के साथ मिलकर अंग्रेज़ी सेना के विरूद्ध बाकायदे युद्ध की घोषणा कर दी। उन्होनें विद्रोही सेना के साथ फ़ैजाबाद में अपना अड्डा जमाया। कर्नल हण्ट के साथ खोजनीपुर में इनके बीच तगड़ा मुकाबला हुआ। इस युद्ध के पूर्व कर्नल हण्ट ने नवाब आसफुद्दौला की बूढ़ी माता खुर्शीदमहल बेगम के सारे माल-असबाब पर क़ब्जा कर लिया था। सारे जिले में इस ख़बर के फैलने के बाद क्रांतिकारियों की एक गुप्त सभा हुई। इस सभा में फ़ैजाबाद तथा नज़दीकी नेताओं ने अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध करने का निर्णय लिया। इसीलिए जिस समय बेगम हज़रत महल की सेना ने अपनी पूरी शक्ति से कर्नल हण्ट की सेना का खोजनीपुर में मुकाबला किया। उन विद्रोहियों ने भी कर्नल हण्ट की सेना को चारों ओर से घेर लिया। उस युद्ध में कोई भी अंग्रेज बच कर नहीं जा सका। राजा बेनीमाधव के हाथों कर्नल हण्ट मारा गया। क्रांतिकारियों ने उसकी लाश उल्टी टाँगकर सारे शहर में घुमाई। अचानक 13 नवम्बर को भारी कुमुक आ जाने के कारण विद्रोहियों (क्रांतिकारियों) को पराजित हो जाना पड़ा। उनमें से कुछ नेपाल भाग गये और कुछ को फाँसी दे दी गई। गिरफ्तार हुए क्रांतिकारियों में किसी ने भी अपनी जान बचाने के लिए साथियों का नाम नहीं बतलाया। राजा बेनीमाधव के प्रसंग में यह बात ध्यातव्य है कि मजूमदार ने 1857 की क्रांति में उनके अलावा किसी ताल्लुकेदार को देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ते हुए नहीं पाया है। उन्होंने लिखा है–

> "The heroic fight against the British by some Talukdars of Avadh like Beni Madho has invested the whole class with a sort of sancity as fighters for national freedom"[13]

सुल्तानपुर में नागर को वकील गणपति सहाय से पता चला कि वहाँ अमहट वालों ने गदर में सबसे अधिक हिस्सा लिया था।

गोंडा जिले में नागर को एक सनाढ्य ब्राह्मण जियालाल ने राजा देवीबख्श की लोकप्रियता से परिचित कराया। उन्होंने राजा देवीबख्श के बारे में लोक रचना सुनाई। नागर वहाँ कांग्रेस के पुराने और प्रतिष्ठित कार्यकर्ता ठाकुर नौरंगीसिंह से मिले। वे देवीबख्श के कुटुम्बी थे। उन्होंने देवीबख्श को विसेन क्षत्रिय बताया। राजा देवीबख्श को उनके राशन विभाग के अध्यक्ष ने धोखा दिया था। वह अंग्रेजों से मिल गया था। इसीलिए अंतिम युद्ध के समय सात दिनों तक भारतीय सेना को राशन नहीं मिला था। इस विश्वासघात से दुःखी होकर राजा राज्य छोड़कर चले गये। राजा के बाद रियासत तीन भागों में बंट गयी। नागर ने एडवोकेट शान्तिप्रसाद शुक्ल से मुलाकात की। उन्होंने सर्वप्रथम देवीबख्श की वीरता के बारे में बतलाया। उसके बाद उन्होंने सुकुमार सेन और मौलाना आज़ाद के विचार को गलत बताते हुए कहा कि पुराने लोगों में भी राष्ट्रीयता थी। उनकी राष्ट्रीयता आज-कल की राष्ट्रीयता से भिन्न थी। आजकल की राष्ट्रीयता केवल राजनीतिक है। पता नहीं क्यों लोग उस काल की राष्ट्रीयता की धार्मिक-सांस्कृतिक पहलू को भूल जाते हैं और उसका संबंध केवल वर्तमान की राष्ट्रीयता से जोड़ते हैं।

राजा देवीबख्श की वीरता के कई किस्से प्रसिद्ध हैं। शान्तिप्रसाद ने एक किस्सा अड़ियल घोड़े पर काबू पाने का सुनाया और दूसरा किस्सा राजा बांसी से संबंधित है। एक बार राजा देवीबख्श का एक राजभाट राजा बांसी के दरबार में गया। उसने राजा बांसी को बायें हाथ से सलाम किया। राजा को अपना अपमान लगा। पूछने पर भाट ने कहा कि वह दायें हाथ से केवल राजा देवीबख्श को सलाम करता है। राजा बांसी ने देवीबख्श की वीरता की परख के लिए उस भाट के दायें हाथ में चूड़ियाँ पहना कर वापस भेजा। देवीबख्श का तेज जाग उठा। उसने बांसी पर चढ़ाई कर उसे पराजित कर दिया। उन्होंने बांसी के राजद्वार का फाटक उखाड़कर अपने सिंहद्वार पर लगा दिया। शान्तिप्रसाद शुक्ल ने यह भी बतलाया कि देवीबख्श के महल और भग्नावशेष के खंडहर पर धानीपुर के राजा चन्द्रभानु दत्त राम का अधिकार हो गया। उन्होंने महल के एक भू-भाग को जिला कांग्रेस कमेटी को भवन बनाने के लिए दे दिया है। यहाँ उत्तर दिशा में बस्ती बसाई जा रही है। उन्हें ऐतिहासिक स्थलों पर यह नई बस्ती बसाना बहुत खलता है।

नागर ने शान्तिप्रसाद शुक्ल से तलुसीपुर की रानी के बारे में भी जानकारी प्राप्त करनी चाही। लेकिन उन्होंने केवल इतना ही सुन रखा था कि रानी बहुत मनस्विनी और अहंकारिणी थी। तुलसीपुर की रानी राजेश्वरी देवी के बारे में रजनीकांत वर्मा ने कुछ सूचनाएँ दी हैं। उनके अनुसार, राजा दृगनारायण सिंह को लखनऊ की रेजिडेंसी में गोली मार दी गयी थी। उसके बाद उनकी पत्नी राजेश्वरी देवी ने तुलसीपुर के स्वतंत्रता संघर्ष की घोषणा कर दी थी। उसने अपने शिशु पुत्र को तुलसीपुर का राजा घोषित कर दिया और उसकी संरक्षक बनकर राज्य और क्रांति का संचालन शुरू किया। रानी राजेश्वरी देवी गोंडा के राजा देवीबख्श का दाहिना हाथ बन कर युद्ध का संचालन करती रहीं। जब अंग्रेजों ने जागीर लौटाने कर प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाना चाहा तो उनका उत्तर था–

> "जिन आदर्शों के लिए मेरे देवता पति ने अपना बलिदान कर दिया, उस आस्था को मैं किसी भी प्रलोभन से त्याग नहीं सकती। विदेशी राज्य की पराधीनता स्वीकार कर जीने की अपेक्षा ईश्वरी देवी (राजेश्वरी देवी) स्वतंत्र रहकर मरना अच्छा समझती है।"[14]

रानी के इसी स्वाभिमान और निष्ठा के कारण 1857 की क्रांति की दावग्नि बुझने के अंतिम दिनों में भी तुलसीपुर स्वतंत्र रहा। परिणामतः दिल्ली, कानपुर और लखनऊ (क्रांति के तीनों केन्द्र) के पतन के बाद क्रांति के अग्रणी नेताओं नाना साहब, बेगम हज़रत महल, बाजीराव, बालाजी, बेनीमाधव आदि ने तुलसीपुर के दुर्ग में शरण ली थी। लामती लालेपुर के युद्ध में क्रांतिकारी सेना की पराजय के बाद गोण्डा नरेश देवीबख्श सिंह ने भी तुलसीपुर के दुर्ग में शरण ली थी।

1857 की क्रांति में गोंडा के देवीबख्श सिंह का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। रुद्रांग्शु मुखर्जी का मानना है कि अवध के विद्रोह के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमें उन्हीं ताल्लुकेदारों ने हिस्सा लिया जिन्होंने अपनी सम्पत्ति खोयी थी। उन्होंने उदाहरण के रूप में चर्दा, मीरा (भींगा bhinga), गोंडा, नौनपारा, धौवरा के राजाओं को लिया है। उनके अनुसार उक्त स्थानों के ताल्लुकेदारों की संपत्ति का कोई नुकसान नहीं हुआ था। इस प्रकार गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह ने बिना किसी स्वार्थ के क्रांति में हिस्सा लिया था।

नागर को बहराइच में मुरौवाडीह नामक स्थान में बलभद्रसिंह के संबंधी के रहने की सूचना मिली थी। नागर ने एक युवक से वहाँ जाने का रास्ता पूछा तो उसने बताया, "अइसी ते चले आव आगे गद्दारन का घर परी। वहिके आगे ते रास्ता है।" गद्दार का घर सुनकर नागर चौंके। पूछने पर पता चला कि उस व्यक्ति ने केवल सुन रखा था। नागर के साथ आए सूचना अधिकारी सिंह साहब को ध्यान आया कि वह भूमि चहलारी के ठाकुर से ज़ब्त कर अंग्रेजों ने अपने किसी सिक्ख मददगार को दे दी थी। नागर को इस बात का आश्चर्य हुआ कि एक सदी बाद भी लोग इस बात को याद रखे हुए हैं। इससे नागर ने यह निष्कर्ष निकाला कि वाचिक परम्परा में गदर का इतिहास इस प्रकार सुरक्षित है।

किंवदन्तियों के साथ ही मुरौवाडीह में ननकऊसिंह (राजा बलभद्रसिंह के भतीजे) के 'जंगनामा' जैसे अद्‌भुत कृति का नागर को पता चला। उसमें क्रांतिकारियों के संबंध में बहुत-सी सूचनाएँ और लोकगीत मौजूद है। जैसे – आशीर्वादी पांडे ने चहलारी के राज्य के बारे में एक लोकगीत सुनाया–

"भाजि गए इलंगी झिलंगी।
भाजि गए गज के असवारा।।
हरदत्त कहैं हम खेत लड़ब।
उइ जाय लुकान नदी के किनारा।।
एक जीवत है बलभद्र बली।
जिन जाय झपटि अंगरेज को मारा।।"[15]

जंगनामा का उल्लेख भगवानदास माहौर ने भी अपनी पुस्तक '1857 की क्रांति का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव में किया है। माहौर का मानना है कि इस जंगनामे में ठाकुर बलभद्रसिंह की 1857 की स्वाधीनता संग्राम क्रांति में वीरता और आत्म-बलिदान की यशोगाथा गायी गई है। इस जंगनामें में कहीं न अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति है, न मुसलमान राज्य का विरोध। इसमें 1857 का जन-संग्राम रूप ही बड़ी अच्छी तरह व्यक्त हुआ है। 1857 के स्वाधीनता संग्राम (क्रांति) में एक वर्ग के रूप में सामन्तों ने देशद्रोह का ही काम किया था। राजा बलभद्रसिंह, बाबू कुंवर सिंह, बेनीमाधव आदि तत्कालीन सामन्ती वर्ग के प्रतिनिधि नहीं अपवाद ही हैं। यही बात जंगनामे से प्रकट होती है।

'गदर के फूल' में जंगनामा की विस्तृत चर्चा मिलती है। जंगनामा के अनुसार, मृत्यु के समय राजा बलभद्रसिंह की अवस्था 18 वर्ष 3 दिन की थी। नागर का मानना है कि 'जंगनामा' काव्य की दृष्टि से भले महत्त्वपूर्ण न हो, परन्तु इतिहास की दृष्टि से बहुमूल्य है। इस जंगनामें की एक विशेषता यह भी है कि उसमें जन-साधारण के, विभिन्न जातियों के शूरवीरों के नाम लिखे हैं।

नागर ने इकौना के राजा उदितप्रकाश का नाम भी गदर के सिलसिले में सुना था। वे वहाँ के लाला सालिगराम के पुत्र रामकुमार से मिले। उनसे पता चला कि राजा उदितप्रकाश गदर में हारकर भागे, फिर वापस नहीं आए।

नागर ने एक पुस्तक 'नागकोशलोत्तर' के हवाले से रेहुआ और बौंडी के राजाओं के बीच वैमनस्य के बारे में लिखा है। उसमें यह भी विवरण मिलता है कि लखनऊ की लड़ाई में घर के बाद बेगम बौंडी आयी थीं। महाराज हरदत्तसिंह ने अपना धर्म समझ कर अंग्रेजों की परवाह न करते हुए उन्हें शरण दी थी। उन्होंने भया हरकिशन सिंह को अपनी सेना का 'कमांडिंग अफसर' बना कर बेगम की मदद के लिए भेजा था। उनके पैर में गोली लगी और वे ज़ख्मी होकर लौटे। अंग्रेजों की जीत हो गयी। अंग्रेज़ी सेना से हार के बाद महाराज हरदत्तसिंह भी नेपाल के पहाड़ों में भाग गये।

ढौढ़े गाँव नेपालराज में उन्हें कुँवर हरनाम सिंह से राजा जगजोतसिंह का इतिहास लिखित रूप में मिला। सन् 1857 के संगठन में राजा जगजोतसिंह सम्मिलित हुए और बागी घोषित हुए। नानाराव पेशवा ने उनके वहाँ आश्रय लिया तो उन्होंने अंत तक साथ निभाया। अंग्रेजों द्वारा लालच दिए जाने पर भी जगजोतसिंह अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हुए। अंग्रेजों से पराजय के बाद उन्हें चर्दा का किला छोड़ना पड़ा। उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि बिना बदला लिये किले में प्रवेश नहीं करेंगे। उनके तेज से घबराकर वायसराय ने आदेश दिया कि तीन दिनों से अधिक किसी स्थान पर न ठहरें। साथ ही दस आदमियों से अधिक अपने पास आदमी न बटोरें। बाद में उन्हें अंग्रेजों ने एक मौज़ा रामपुर मलावाँ तहसील जिला बहराइच में बतौर माफ़ी प्रदान किया।

दुविधापुर में नागर ने राजा जगजोतसिंह के पुत्र शिवराज सिंह से भेंट की थी। उन्होंने बताया कि जगजोतसिंह ने अंग्रेजों के लड़ाई मस्जिदिया किले में ही

लड़ी थी। बाराबंकी जिले में चहलारी, चर्दा, गोंडा, बलराम और इकौना के राजाओं के बीच कांफ्रेंस हुई थी। उसमें तय हुआ था कि उनमें से कोई अंग्रेजों की तरफ से लड़े ताकि हार या मृत्यु की स्थिति में बच्चों की परवरिश करने वाला कोई तो हो। सीतापुर में गुरुप्रसाद दीक्षित ने बतलाया कि धनापुर पंडरिया के सूबेदार मेज़र जोधासिंह ने अंग्रेजों का जम कर मुकाबला किया। अंत में जोधासिंह को गोली लगी।

नागर सीतापुर के रास्ते मितौली पहुँचे। मितौली खीरी जिले में आता है। वहाँ मुहम्मद सैकलन से कुछ जानकारियाँ प्राप्त की। मुहम्मद सैकलन ने बताया कि औरंगाबाद में अंग्रेजों से लड़ाई हुई। अंग्रेज मारे गये। लेकिन वहाँ से पाँच-छः अंग्रेज पुरुष और एक औरत भाग कर मितौली आई। राजा लोनेसिंह ने उन्हें अपने यहाँ बुलाकर खातिरदारी की। गदर देखकर ऐसा लग रहा था कि अंग्रेजों का ज़माना उठ गया। इसीलिए मुंशी जहरूलहसन के कहने पर लोनेसिंह ने छिपाए अंग्रेजों को लखनऊ दरबार भेज दिया। फिर ख़बर आयी कि अंग्रेजों का राज फिर कायम हो गया। मगर तब तक अंग्रेज कैदी लखनऊ भेजे और मारे जा चुके थे– सिर्फ औरतें नहीं मारी गयी थीं। मुहम्मद सैकलन के अनुसार खीरी जिले में केवल मितौली में लड़ाई हुई। लड़ाई में लोनेसिंह का किसी ने साथ नहीं दिया, भाई माधोसिंह ने भी नहीं। बहुत जल्द ही राजा लोनेसिंह गिरफ्तार कर लिय गये। गिरफ्तारी के बाद राजा ने खाना-पीना, दातून करना वगैरह सब छोड़ दिया और कलकत्ते में उतारे गये तो लाश ही निकली।

नागर को पता चला कि लोनेसिंह पर कोई लोककाव्य नहीं रचा गया क्योंकि उन्होंने क्रांतिकारियों का साथ नहीं दिया था। नागर ने राजा लोनेसिंह के बारे में 'स्वतंत्र भारत' के लेख में भी पढ़ा था। उन्हें यह पता चला कि लोनेसिंह ने अपना राज बढ़ाने के लिए पड़ोसी सामन्तों से छीना-झपटी और मार-काट की थी। शिवराज बख्श सिंह और गज़ेटियर के विवरण से लोनेसिंह के चरित्र का पता चलता है। लोनेसिंह के अंग्रेजों को अनिच्छा से शरण दी थी। उनके साथ बुरा बर्ताव किया और अंत में उन्हें लखनऊ भेज दिया।

अमृतलाल नागर ने सुन्दरलाल लिखित 'भारत में अंग्रेज़ी राज' में पढ़ा था कि अम्बरपुर में अवधवासियों और अंग्रेजों की सहायक नेपाली सेना का जबरदस्त

युद्ध हुआ था। वहाँ चौंतीस सिपाहियों ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए शहादत पायी थी। लेकिन अपनी यात्रा के दौरान सीतापुर जिले के अम्बरपुर में नागर को नेपालियों की लड़ाई का कुछ पता न चला। वहाँ नागर को पता चला कि महमूदाबाद के पास एक और अम्बरपुर है। अम्बरपुर मौलवी अहमदुल्ला शाह के अद्‌भुत रणकौशल का परिचायक अवश्य रहा है। उन्होंने मनवा के क़ोट पर तोपें चढ़ा कर अपने आपको सुरक्षित कर, अंग्रेज सेनाओं को अपने गोलों से खतरे में डाल दिया था। मौलवी अहमदुल्ला के लिए कर्नल जी.वी. मैलेसन ने लिखा है–

> "अगर देशभक्त वह आदमी है जो अपने देश की आज़ादी के लिए, जिसे गलत ढंग से नष्ट कर दिया गया हो, साजिश करे और लड़े तो मौलवी निश्चित रूप से एक सच्चा देशभक्त था– वह उन अजनबियों के खिलाफ, जिन्होंने उसके देश को हथिया लिया था, मर्दानगी, नैतिकता और दृढ़ता के साथ मैदान में लड़ा और उसकी स्मृति को सभी राष्ट्रों के बहादुर ओर सच्चे दिल वाले लोगों से आदर पाने का अधिकार है।"[16]

अम्बरपुर से कुछ ही दूर अटरिया ग्राम है। वहाँ के श्री प्रयागदत्त शुक्ल से नागर को पता चला कि नेपाली फौज ने अंग्रेजों की मदद की थी। शुक्ल ने यह भी बतलाया कि वहाँ की प्रजा अंग्रेजों के साथ थी लेकिन बेगम को मान देती थी।

गदर से पूर्व सीतापुर जिले की राजधानी ख़ैराबाद थी। मुंशी हरप्रसाद नाज़िम और मौलवी फज़लहक के कारण गदर में ख़ैराबाद का महत्त्व बढ़ा था। नागर ने ख़ैराबाद में मौलवी फज़लहक के पोते मौलवी हकीम जफ़रूलहक से मुलाकात की। उन्होंने बताया कि मौलवी फज़लहक ने फ़तवा पेश किया था जिसके मुताबिक गदर को उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ़ ज़ेहाद करार दिया और हर मुसलमान का उसमें शरीक होना मज़हबी फर्ज़ बतलाया।

रायबरेली मे नागर ने शिवदर्शन सिंह या सुदर्शन काना की वीरता के बारे में बहुत सुना। वहाँ चन्द्रलोचन सिंह के विवरण से पता चला कि शिवदर्शन सिंह ने कभी मालगुज़ारी अदा न की थी– न नवाबों को और न अंग्रेजों को। उनकी शारीरिक शक्ति इतनी थी कि चाँदी वाला रुपया हाथ से मसल देते थे। घुड़सवार एक नंबर के थे। नायन राजवंश के शिवदुलारे से भी नागर ने गदर संबंधी कुछ जानकारियाँ हासिल की थीं। उनके अनुसार, नायन के राजा भगवान बख्श का गदर में विशेष हाथ नहीं था, वे संयोग से उसमें फँस गये थे। नागर को जितेन्द्र सिंह के

पास 'कनपुरिया क्षत्रिय वंश परिचय' पुस्तक मिली। उसमें उन्हें तिलोई टिकारी और मानसिंह घराना के गदर से संबंधित होने की बातें पता चलीं। तिलोई राजा के संबंध में उस पुस्तक में लिखा है कि राजा बुनियादसिंह ने अपने भतीजे जगापालसिंह को गोद लिया था। उन्होंने पहले तो सन् 1857 के गदर में भाग लिया परन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों का साथ देना स्वीकार कर लिया। टिकारी रियासत के सर्वजित सिंह ने 1857 के सिपाही विद्रोह में अंग्रेजों की सहायता की थी। सर्वजितसिंह ने पितामह जंगबहादुर सिंह बहुत स्वाभिमानी थे। उन्होंने मुसलमानी राज में हिन्दुत्त्व की आड़ में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का कभी उच्चारण नहीं किया। उनकी उस बात से कुपित होकर बानू बेगम ने गाँव भागीरथपुर पर आक्रमण कर दिया। वह गाँव जंगबहादुर सिंह के ज्येष्ठ पुत्र विन्ध्यासेवक सिंह के अधिकार क्षेत्र में था। बेगम की सेना ने विन्ध्यासेवक की सेना को पराजित किया और उसका सिर काटकर पिता के पास भेज दिया। लेकिन जंगबहादुर सिंह ने बिना विचलित हुए अभिमान के साथ कहा कि सिर किसी वीर पुरुष का होगा।

कनपुरिया क्षत्रियों में मानसिंह घराने के ठाकुर रामगुलाम सिंह का नाम भी सत्तावनी क्रांति के सिलसिले में आता है। 'कनपुरिया क्षत्रिय वंश परिचय' में उनके संबंध में लिखा है कि शंकरपुर के राणा बेनीमाधव का साथ देने के कारण उनकी ज़ायदाद ज़ब्त कर ली गयी। वह ज़ायदाद तिलोई के राजा को दे दी गई। लेकिन स्थानीय जानकारी से पता चला कि रामगुलाम सिंह ने प्रारंभ में मानसिंह का साथ दिया किन्तु बाद में अंग्रेजों के सहयोगी हो गये। फिर उनके साले राजा हनुमंत सिंह के कारण अंग्रेज रामगुलाम सिंह के विरूद्ध हो गये। फिर ठाकुर रामगुलाम सिंह शंकरपुर के राणा बेनीमाधव के पास गये और वहाँ से नेपाल भाग गये। बाद में अंग्रेजों को उनकी नेकनीयती का पता चला तो उन्हें नेपाल से बुला कर उन्नाव जिले में चार गाँव गुज़ारे के दिये गये।

ठाकुर गजाधर सिंह ने नागर को बतलाया कि शंकरपुर के राणा बेनीमाधव ने बेगम का साथ अंतिम समय तक दिया था। अंग्रेजों से राणा की लड़ाई भीरा गोविन्दपुर में हुई। ठाकुर गजाधर सिंह ने यह भी बतलाया कि गदर के बहुत बरसों बाद साधु भेष में राणा दो बार शंकरपुर आये थे। गजाधर सिंह ने हीरा पासी (शिवदीन) के बारे में बताया जिसने रायबरेली के किले से राणा को छुड़ाया था।

गज़ाधर सिंह के अनुसार गदर के समय शंकरपुर से छत्तीस हज़ार फौज़ थी। राणा बेनीमाधव के छोटे भाई युवराज सिंह ने उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ़ लड़ने से मना किया था। राणा बहुत हठी थे, न माने। उन्हें अपने बेटे के भाई के पास छोड़ने मैं भी आपत्ति थी। उनका कहना था अगर जीतेंगे तो सब कुछ होकर रहेंगे और जो हारे तो भाई तो रहेगा ही।

बेनीमाधव के संबंध में नागर ने एक प्रतिभाशाली युवा कवि की रचना 'बेनीमाधव बावनी' का उल्लेख किया है। कृष्ण शंकर शुक्ल 'कृष्ण' नामक इस युवा कवि ने यद्यपि अपनी रचनाएँ कभी प्रकाशित नहीं कराईं लेकिन वे विशिष्ट हैं। जेसे–

"बेनी बीर बाना बैस वंश मरदाना,
बाकी भूपति जनाना ठानठाना भरी घात है।
इन्द्रपाल, माधवसिंह, चन्द्रपति, रघुनाथ,
मिलिकै फिरंगिन.दगा इर्द सो ज्ञात है।
ताना देखि भ्रकुटी सुयुद्ध दिवाना देखि,
कम्पनी बिलायत सकल बिललात है।
छीन्यो तोपखाना तब शत्रु है सकाना,
रन राना बिरझाना आज खाना नहीं खात है।।"[17]

अमृतलाल नागर ने उन्नाव जिले के गढ़ी बैहार (बैहार-बिहार का बिगड़ा हुआ रूप) का वर्णन करते हुए सर होपग्राण्ट के कथन का उल्लेख किया है। उस वर्णन से पता चलता है कि होपग्राण्ट यहाँ की भीषण गर्मी से परेशान था और उस पर यहाँ के क्रांतिकारियों की वीरता का प्रभाव भी पड़ रहा था। फिर भी विजय सर होपग्राण्ट की सेना की हुई। उन्होंने प्रभावशाली ताल्लुकेदार शिवरतन सिंह (अमरतन सिंह) और उनके भाई जगमोहन सिंह को मार डाला तथा उनकी तोपें छीन ली थी। शीघ्र ही क्रांतिकारियों की हार हो गयी और उनका दल तेजी से पीछे लौटने लगा। होपग्राण्ट ने अपना एक सैन्य दल क्रांतिकारी दल के पीछे छोड़ दिया और बाकी को पड़ाव डालने का आदेश दिया। आधी रात में अचानक चीख-गुहार मचने और घोड़े की टापों का शोर शुरू हुआ। बहुत गड़बड़ी मची थी। एक बैल गाड़ीवान मारा गया। तोपखाने के कप्तान गिब़न दो बार धक्का खाकर लौट गये और अन्त में दुर्घटनावश अपनी ही रिवाल्वर से घायल हुए।

गढ़ी बैहार से नागर सेमरी पहुँचे। उन्होने वहाँ के लाल साहब से मुलाकात की। लाल साहब उन ताल्लुकेदारों में थे जिन्होंने गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया था। उनके पास राणा बेनीमाधव का एक तैल चित्र था। राणा बेनीमाधव जन संगठन और छापेमार युद्ध की कला में अपने युग के किसी भी प्रतिभाशाली व्यक्ति से कम नहीं थे। विलियम रसेल ने 16 नवम्बर सन् 1858 की रात का वर्णन अपनी पुस्तक 'माई डायरी इन इण्डिया' में किया है। उस रात शंकरपुर पूरी तरह से घेरा गया था लेकिन बेनीमाधव अंग्रेजों को चकमा देकर अपनी पूरी सेना, खजाना, तोपखाना और परिवार की स्त्रियों को लेकर साफ़ निकल गया था। रसेल ने उस रात का ऐसा वर्णन किया है जिससे साफ़ पता चलता है कि राणा की वीरता का लोहा अंग्रेज भी मानते थे।

नागर ने मानपुर के तिहत्तर वर्षीय वृद्ध ठाकुर रणदमन सिंह से 1857 की क्रांति और गदर के बारे में जानकारी प्राप्त की। उन्होंने बतलाया कि अंग्रेजों ने अवध का राज वाज़िदअलीशाह से ले लिया तो राणा बेनीमाधव ने बैसवारे के सब लोगों को मालगुज़ारी करने से रोक दिया। बस एक तिलोई के राजा ने उनका कहना न माना। राणा ने उन्हें घेरकर मारा।

नागर ने राव रामबख्श की एक आदत का उल्लेख किया है कि उन्हें डूबते लड़कों को देखने में आनंद आता था। वे घाट पर पूजा करने बैठते और उनके सधे हुए डुबकी खोर नहाने वाले बच्चों की टाँग घसीट कर पानी में खींच ले जाते थे। राव रामबख्श ने अंग्रेजों से कोई लड़ाई तो नहीं लड़ी लेकिन दो काम किये–पहला, शिवाले में आग लगायी और दूसरा अंग्रेजों की नाव डुबोयी। नागर ने लिखा है कि सुरेन्द्रनाथ सेन की पुस्तक 'अठारह सौ सत्तावन' तथ टॉमसन और डेलाफोज़ की पुस्तकों में नाव डुबोने की घटना का उल्लेख है लेकिन मंदिर में आग लगाने का नहीं। इस घटना का उल्लेख देवीदत्त शुक्ल के 'अवध के गदर का इतिहास' में मिलता है।

नागर ने ग़बिन्स के उस कथन का हवाला दिया है जिसमें कहा गया है कि 71वीं देशी पलटन की लाइट कम्पनी के सिपाहियों ने 71 नम्बर का भोजनालय नष्ट कर दिया था। पहली गोली चलने पर ही अंग्रेज अफ़सर वर्ग भोजनालय छोड़कर जा चुके थे। इसीलिए कोई अंग्रेज नहीं मारा गया। सैयद कमालुददीन हैदर का

इतिहास ग्रंथ 'सवानहात-ए-सलातीन-ए-अवध' वस्तुतः अंग्रेजों की प्रशस्तियों का पोथा है। सत्तावनी क्रांति का स्वदेशी रूप कमालुददीन को सख्त नापसंद था। नागर ने 'बेगमाते अवध के खूतूत' का भी उल्लेख किया है जिससे यह व्यक्त होता है कि बहुत-सी बेगमों को इस हौलनाक हंगामें से चिढ़ थी। 'सवानहात-ए-सलातीन-अवध' से नागर ने मच्छी भवन पर तोपें लगाने की घटना का उल्लेख किया है।

लक्ष्मीबाई का वर्णन करने में नागर ने विष्णुभट्ट गोड्से के 'माझा प्रवास' का उपयोग किया है। खास बात यह है कि 'माझा प्रवास' का नागर ने 'आंखों देखा गदर' नाम से हिन्दी अनुवाद किया था। इसीलिए विष्णुभट्ट ने गदर के बारे में जो कुछ भी लिखा है उसे नागर ने पूर्णतः आत्मसात कर लिया था। उसमें साफ कहा गया है कि लक्ष्मीबाई सतीत्व के तेज से युक्त थीं। नागर का तो यहाँ तक कहा है कि यदि रानी बाईस वर्ष की आयु में इस प्रकार काल कवलित न होकर पूरी आयु पातीं, तब भी वे चरित्र से अंत तक निष्कलंक बनी रहतीं।

इस प्रकार 'गदर के फूल' के सन्दर्भ में इतिहास के प्रयोग पर विचार करने के क्रम में हम नागर की ऐतिहासिक समझ को समझ पाते हैं। उन्होंने इस ऐतिहासिक समझ का प्रयोग विभिन्न स्रोतों जैसे अवध गज़ेटियर, ऐतिहासिक पुस्तकें और वाचिक परंपरा से तथ्य संकलन में किया है।

(ii) ऐतिहासिक साक्ष्यों और घटनाओं का विश्लेषण

किसी ऐतिहासिक घटना पर आधारित रचना में विश्लेषण का बहुत महत्त्व होता है। विश्लेषण के अभाव में तथ्यों का संकलन रचना नहीं कहला सकती। हाँ, वह संकलन शोध कार्य में जरूर सहायक हो सकती है। ऐसी स्थिति में न लेखक के विचार का पता चल पता है और न पाठक किसी निष्कर्ष तक पहुँच पाता है। विश्लेषण के बिना किया गया तथ्य संकलन हमारे अंदर कोई समक्ष पैदा नहीं कर पाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में 'गदर के फूल' को देखने पर हम पाते हैं कि उसमें अमृतलाल नागर ने ऐतिहासिक साक्ष्यों और घटनाओं का केवल उल्लेख ही नहीं किया है बल्कि उसका विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने ऐतिहासिक साक्ष्यों और किंवदन्तियों का विश्लेषण कर उसके निहितार्थ को जानने का प्रयास किया है।

नागर ने कथ्य के प्रस्तुतीकरण में उस विश्लेषण की भूमिका को भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने हर तथ्य कर प्रस्तुतीकरण बहुत ही तार्किक ढंग से किया है। जैसे नागर ने अपनी यात्रा के दौरान यह अनुभव किया कि बेगम हज़रत महल ने नेपाल पहुँचने के मार्ग में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित है। इतिहासकारों का मानना है कि बेगम सीतापुर से होकर नेपाल गयी थीं। रामस्वरूप वाजपेयी ने बेगम का मार्ग बाराबंकी होकर बताया। उसी तरह हाजी साहब ने बेगम का मार्ग कुर्सी, देवा, भयाराही से होते हुए भिठौला बतलाया है। नागर ने इतिहासकारों और किंवदन्तियों में उपस्थित बातों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि किंवदन्तियों में बेगम का मार्ग बाराबंकी की जिले से होकर भिठौला बतलाया गया है। इसीलिए इस बात की संभावना बनती है कि बेगम ने लखनऊ या भिठौला में रहते हुए जगह-जगह के दौरे किये हों। रसल के कथानुसार उन्होंने सारे अवध में उत्तेजना भर दी थी।

नागर का यह पूरी तरह मानना है कि किंवदन्तियाँ कितनी ही गलत क्यों न हों फिर भी अपने अंदर वे आमतौर पर एक बड़ा सच छिपाए रहती हैं।

1857 की क्रांति के नायकों के बारे में कहा जाता है कि वे अपने स्वार्थ के लिए लड़े। इसका विश्लेषण नागर ने बखूबी किया है। अमृतलाल नागर का कहना है कि –

> "जो कमज़ोरियाँ अमरनाथ से कन्याकुमारी और द्वारका से कामरूप कामख्या तक व्याप्त है; वे भारतभूमि पुत्रों में मौजूद थी, उनसे कमोवेश ये सब भी बँधे थे, किन्तु जो देश की शक्ति थी, इनके द्वारा प्रत्यक्ष देदीप्यमान हुई।"[18]

अर्थात् यह सही है कि क्रांति के उन्नायकों का निहित स्वार्थ भी रहा लेकिन उनमें राष्ट्र के लिए मर-मिटने का ज़ज़्बा भी था। एक बार क़दम आगे बढ़ाने के बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। 1857 की क्रांति के नायकों में अटूट भारतीय परम्परा विद्यमान रही है। नागर का कहना है कि रामायण, महाभारत और पुराणों द्वारा जो संस्कार इस देश की नस-नस में बिंधे हैं वे राष्ट्र की चारित्रिक एकता के परिचायक हें। जब भी देश का कोई नायक इसे बचाने के लिए उठता है, वह सारे राष्ट्र को अनुप्राणित करता है। मजूमदार का मत है कि अधिकांश ताल्लुकेदार व देशी शासक अपना हित देखते रहे लेकिन उसके बावजूद अंत तक अंग्रेजों के

विरूद्ध वीरता का प्रदर्शन करने वालों की प्रशंसा की है। उन्होंने शंकरपुर के राणा बेनीमाधव की वीरता की प्रशंसा की है। इसी तरह फ़ैजाबाद के मोहम्मद अब्दुल्ला को सबसे बड़ा नेता स्वीकार किया है।

नागर का कहना है कि–

> "सत्तावनी क्रांति अनायास और स्वतंत्र रूप से नहीं आई बल्कि वह एक लंबे वाक्य के क्रियापद-सी आयी थी। यह क्रांति प्रायः देशव्यापी होकर भी विशेष रूप से कुरुक्षेत्र, अवध और मगध में हुई, अर्थात् सामंती के आदिम गढ़ मध्य देश में हुई थी।"[19]

इस क्रांति की व्यापकता को नागर ने निरंतरता में देखा है। यही निरंतरता मजूमदार और मन्मथनाथ गुप्त ने भी देखी और बतलाया कि 1857 के पहले भी सिपाही विद्रोह हो चुके थे। हाँ, यह अलग बात है कि मजूमदार इस निरंतरता के कारण 1857 की क्रांति को विशिष्ट मानने से इनकार करते हैं जबकि मन्मथनाथ गुप्त और नागर 1857 की क्रांति की विशिष्टता को उसकी व्यापकता के कारण स्वीकार करते हैं।

मजूमदार ने 1857 की क्रांति को राष्ट्रीय लज्जा के रूप में देखा है। इस पर नागर का कहना है जिन इतिहासकारों ने अंग्रेज़ी इतिहासकारों द्वारा भारतीयों की नृशंसता, क्रूरता, जघन्यता और पैशाचिकता पढ़कर 1857 की क्रांति को राष्ट्रीय लज्जा के रूप में देखा है, उन्हें अंग्रेजों द्वारा ही लिखे हुए कुछ ऐसे अंश भी पढ़ने चाहिए, जिनसे भारतीय संस्कृति और भारत की शान बहुत ऊँची होती है। यह सच है कि 1857 की क्रांति के कुछ दुर्बल पक्ष रहे हैं, पर कुछ सबल पक्ष भी रहे हें। दुर्बल पक्ष को देखते हुए एकतरफा निर्णय देना उचित नहीं लगता है।

फैजाबाद के शारद ने सन् 1857 की क्रांति से संबंधित बहुत-सी जानकारी नागर को लिखकर भेजी। उनका नागर ने 'गदर के फूल' में उल्लेख किया है। उन सूचनाओं को देने के बाद नागर उसका विश्लेषण भी करते हैं। नागर ने उनमें तीन बातें महत्त्वपूर्ण मानी है। सर्वप्रथम् उन्होंने इस बात पर ग़ौर किया है कि मंगल पांडे का अवधवासी होना वहाँ का निवासियों के लिए गौरव की बात है। नागर के अनुसार फैज़ाबाद में षड्यंत्रकारियों की गुप्त बैठकें होने का समचार भी महत्त्वपूर्ण है

परन्तु मौलवी अहमदुल्ला शाह का नाम उसमें न होने का कारण नागर को समझ में नहीं आता है।

नागर ने आगे दूसरी सूचना का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि यह सच है कि इतनी बड़ी क्रांति का सूत्रपात रजवाड़ों की ओर से न होकर भारतीय सेना के सूबेदारों की मुख्य भूमिका से हुआ था। नागर मजूमदार की इस राय से सहमत है कि सन् 57 के विद्रोह का नायक फ़ौज का सिपाही था। उन्होंने यह भी लिखा है कि सर जान के लिखित गदर के इतिहास में हमें ऐसी अनेक बातें देखने को मिलीं, जिनसे क्रांतिकारी सेनाओं के महत्त्व का अन्दाज़ लगता है।

शारद से मिलने वाली तीसरी सूचना को नागर ने उत्साहवर्द्धक बतलाया है। उन्होंने यह विश्लेषित किया कि यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह भूमि जिसमें राम मंदिर या बाबरी मस्जिद होने के मध्य विवाद रहा उसे मुसलमान हिन्दुओं को देने पर विचार कर रहे थे। वह भावना उनमें देश को संकट में देख कर आयी थी। इसलिए उन्होंने आपसी वैमनस्य को भूल कर अपने उस शत्रु के खिलाफ़ ख़ड़े होने का फैसला किया जिसने देश को बाँटने का पूर्ण निश्चय कर लिया था।

आगे नागर ने लिखा है कि इस तीसरी सूचना से यह भी सिद्ध होता है कि वाज़िदअलीशाह अपने शासन काल में हुए हिन्दू-मुसलमान दंगे के तनिक भी दोषी नहीं हैं। वाज़िदअलीशाह धार्मिक पक्षपात करने वाले व्यक्ति नहीं थे। उनके द्वारा रचित रास नाटक में 'रामचन्द्र की जय' के नारे और 'कृष्णभक्त जोगिन' इसका प्रमाण है। इनकी श्रृंगारप्रियता ने होली-दिवाली जैसे –त्योहारों को अपना लिया था। नागर का कहना है कि वाज़िदअलीशाह की साम्प्रदायिकता के बारे में बस एक घटना का पता चलता है– शाह के अफ़सरों ने मंदिर खुदवा डाला था। उससे बड़ा असंतोष फैला। बहुत से प्रतष्ठित हिन्दू शिकायत लेकर मड़ियाव के बड़े साहब (सर हेनरी लारेन्स) के पास गये थे। शाह ने उस बात का बहुत बुरा माना था।

कमालुद्दीन हैदर लिखित 'सवानहात-ए-सलातीन-ए-अवध' में उपर्युक्त घटना का उल्लेख है। नागर ने बतलाया है कि हैदर अंग्रेज परस्त इतिहासकार थे। तब भी उनके कथन से कहीं यह प्रकट नहीं होता है कि वाज़िदअलीशाह ने दंगे को भड़काने के लिए मौलवी साहब की पीठ पर हाथ रखा था।

आगे नागर ने लिखा है कि अयोध्या के दंगे के बाद अयोध्या के हिन्दुओं-मुसलमानों का साथ-साथ लड़ना निःसन्देह इस बात का प्रमाण है कि वे लोग स्थानीय मुसलमानों से अधिक विदेशी ईसाइयों को अपने धर्म का शत्रु मानते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो अंग्रेज़ी फौज की सहायता से दबाए जाने वाले ज़ेहाद के साथ-साथ हिन्दू अंग्रेजों के साथी बन जाते। हिन्दू-मुसलमान एकता के सम्बंध में बाबा रामचरण दास और मियाँ अमीरअली की एकता चिर अनुकरणीय आदर्श है।

एक तथ्य बार-बार प्रकाश में आता है कि क्रांति में भाग लेने वाले शाही लोगों का परिवार बहुत बुरे हालात में है। इस तथ्य का विश्लेषण करते हुए नागर ने लिखा है कि ऐसा विवरण दुःखी करता है लेकिन एक व्यक्ति के बलिदान पर बरसों उसके परिवार का पालन-पोषण करना उचित नहीं है। इससे सरकारी खजाने पर दवाब पड़ेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि वे सम्मान के अधिकारी है; इसीलिए उन्हें सम्मान मिलना चाहिए। इससे उस व्यक्ति के वंशज भी देश के हित में काम करने के लिए प्रेरित होंगे। फिर अगर पेंशन पर विचार किया जाए तो केवल शाही परिवार के वंशजों को ही क्यों साधारण परिवार के वंशजों को भी दिया जाना चाहिए। इस प्रकार यह संख्या बहुत अधिक है जिनके लिए पेंशन की सुविधा उपलब्ध कराना सम्भव नहीं हो सकता। इसके उदाहरण के रूप में नागर ने लिखा है कि यदि अमहट के अमीर खानजादों के वंशज पेंशन के मुस्तहक हैं, तो लखनऊ के वे गरीब पासी क्यों नहीं, जिनके गरीब पुरखों ने बेलीगारद में बार-बार सुरंगें बिछाकर अद्‌भुत साहस का परिचय दिया है।

इतिहासकारों का मानना है कि भारतीयों की ओर से बहुत क्रूरताएँ हुई थी। नागर ने इसे कुछ हद तक स्वीकार किया है। अमहट वालों की भी यह स्वीकारोक्ति है कि उनके पुरखों ने अपने राजा की आज्ञा-पालन करने के जोश में अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं छोड़ा था। यह क्रूरता सचमुच किसी भी युग में अक्षम्य मानी जायेगी लेकिन नागर का मानना है कि बेगम हज़रत महल के अनुशासन में चलने वाली शासन व्यवस्था पर यह इल्ज़ाम नहीं लगाया जा सकता है। हज़रत महल द्वारा शत्रुओं की स्त्रियों और बच्चों को बचाए जाने के प्रमाण मौजूद है। उन्होंने बदले की आग में सुलगते हुए क्रांतिकारियों को कैदी स्त्रियों और बच्चों को देने से इनकार कर दिया था।

अमहट वालों की उस नृशंसता का वर्णन मजूमदार ने भी किया है। इसके कारण नागर राष्ट्रीय लज्जा का अनुभव करते हैं। लेकिन नागर उस नृशंसता के कारण की तलाश करते हैं। उन्होंने पढ़ा था कि भारतीय सैनिकों ने अंग्रेज स्त्री-पुरुषों और बच्चों की रक्षा की थी। इस तरह इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि अंग्रेजों की क्रूरता के प्रति उनके मन में इतनी घृणा भर गयी थी कि कभी-कभार उसका क्रूर प्रकटीकरण हो जाना असम्भव नहीं था।

गोंडा में चोरी-डकैती की पुरानी परम्परा के बारे में नागर का कहना है कि संभवतः किसी ऐतिहासिक कारणवश वहाँ दरिद्रता और बेकारी बढ़ी थी। उसी दरिद्रता और बेकारी के कारण लोगों ने चोरी-डकैती का पेशा अपना लिया था। गोंडा में शान्तिप्रसाद शुक्ल से नागर को राजा देवीदत्त शुक्ल की वंशावली और वीरता के बारे में बहुत-सी बातें पता चलीं। उन्होंने एक बात बतायी थी कि देवीबख्श के भवन और सिंहद्वार के खंडहर वाले स्थान पर उत्तर दिशा की ओर बस्ती बसाई जा रही है। ऐतिहासिक स्थलों से यह छेड़छाड़ गलत है। उसका विश्लेषण करते हुए नागर ने लिखा है कि नयी बस्ती बसाना सुखकारी है लेकिन बीते समय की महत्ता का भी ध्यान रखना आवश्यक है। इसीलिए ऐतिहासिक स्थलों से छोड़छाड़ उचित नहीं है। इतिहास के पृष्ठ हमारे आज और आगामी कल को सचेत कर आगे बढ़ाते हैं।

दूसरी बात नागर ने यह भी बतलायी कि अगर किसी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल पर किसी कारणवश हमें नये युग को स्थापित करना ही हो तो वहाँ मुहल्ला न बनाकर सार्वजनिक महत्त्व का कार्य किया जाना चाहिए। ऐतिहासिक स्थल जन-जन की भावना का प्रतीक होते हैं। इसीलिए दस-बीस-पचास परिवारों को बसाने के लिए सैंकड़ों-हजारों की भावना को ठेस पहुँचाना गलत हैं।

'जंगनामा' के विषय में नागर ने कहा है कि वह काव्य की दृष्टि से भले बहुत महत्त्वपूर्ण न हो लेकिन इतिहास की दृष्टि से है। ऐसा कहने के पीछे तथ्य यह है कि जंगनामे के कवित्त बहुत शुद्ध और उत्कृष्ट कोटि के नहीं है। इसीलिए महत्त्वपूर्ण काव्य-कृति नहीं माने जाा सकते लेकिन इससे बहुत-सी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएँ प्राप्त होती है। जैसे–जंगनामा से पता चलता है कि बलभद्रसिंह बेगम के प्रिय थे और वे पुत्र की तरह उनका ख्याल रखती थीं। जंगनामे में कई

जन-साधारण और विभिन्न जातियों के शूरवीरों के नाम मिलते हैं। जंगनामे की इस विशेषता के बारे में नागर का कहना है कि देश की स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले शूरवीरों के जितने नाम मिलते हैं, उतना ही इतिहास अंतरंग होता है। स्वतंत्रता संग्राम में लड़ने और अपना रक्तदान करने वाले जितने शूरवीरों का पता चलता है, भावी पीढ़ियों के लिए उतना प्रेरणादायी होता है। नागर ने यह स्वीकार किया है कि तत्कालीन भारत अपनी नैतिक और सामाजिक मान्यताओं को लेकर अत्यंत रूढ़ और पतनोन्मुख हो गया था। इस विपरीत परिवेश में भी 1857 की क्रांति ने अपनी महत्ता स्थापित की। जंगनामा को नागर ने प्रेरणादायी माना है। उनका मानना है कि उसमें शूरवीरों की लंबी सूची है यह सूचित करती है कि संकट काल में हम जाति-भेद और ऊँच-नीच का भेद मिटा कर एक हो सकते हैं। साथ ही यह संदेश भी मिलता है कि ऐसी एकता हमें भविष्य में भी अपने उद्देश्य में दृढ़ बना सकती है। साथ ही हमारी स्वाधीनता को अक्षुण्ण रख सकती है।

बलभद्रसिंह के बारे में सर होपग्राण्ट का उल्लेख कर नागर ने बतलाया है कि वह लम्बी-चौड़ी देहवाला, तेजस्वी, व्यक्तित्वशील, चतुर, साहसी, फुर्तीला और भावशून्य पुरुष था। नागर ने बलभद्रसिंह का विश्लेषण कर बताया है कि अठारह वर्ष और तीन दिनों की छोटी-सी आयु में अपने जीवन को पूर्ण कर वह वीर-रस का साधक अपने 'रसों वै ब्रह्म' में लीन हो गया। इस प्रकार लगन से बढ़कर कुछ भी नहीं है। लगन से किसी भी दिशा में काम को पूरा किया जा सकता है।

बेगम हज़रत महल और मम्मू खाँ के अवैध संबंध की चर्चाएँ होती रहती थीं। बिरजीस क़दर के जन्म के समय बेगम की आयु पन्द्रह-सोलह बरस और गदर के समय सताइस-अठाइस बरस होगी। नागर ने इसका विश्लेषण कर बतलाया है कि बेगम को अगर भरी जवानी में बदचलन बनने का शौक होता तो न ही वह ऐसा अपूर्व संगठन कर पातीं और न राजमाता का पद संभाल पातीं। बेगम की संगठन शक्ति के विश्लेषण के क्रम में नागर ने भरावन के राजा मर्दन सिंह के कथन का उल्लेख किया है। राजा मर्दनसिंह ने बेगम की यह कहकर शरण नहीं दी थी कि –"मैं तुम्हें शरण नहीं दे सकता क्योंकि तुम मेंढ़क की तरह इधर से उधर उछलती फिरोगी।"[20]

नागर का मानना है कि मर्दनसिंह का यह कथन बेगम के तूफ़ानी दौरों की पुष्टि करता है।

नागर ने बेगम के संबंध में रसल के कथन को उद्धृत किया है–

> "बेगम में बड़ी योग्यता और तेजस्विता दिखलायी देती है। ... बेगम ने हमारे साथ अनवरत युद्ध की घोषणा कर दी है। इन रानियों और बेगमों के स्फूर्तिवन्त शक्तिशाली चरित्रों को देखकर लगता है कि ज़नानखानों और हरमों में रहकर भी वे अपने अंदर तीव्र क्रियात्मक मानसिक शक्ति पैदा कर लेती है।"[21]

पुनः विलियम रसल को उद्धृत करते हुए नागर ने लिखा है–

> "अपने बेटे के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने सारे अवध को उत्तेजित कर दिया है और मुखिया लोगों ने उसके (बेटे के) प्रति वफ़ादार रहने की कसमें खाई हैं।"[22]

इस उद्धरण का विश्लेषण करते हुए नागर ने लिखा है कि एक स्त्री, भले ही वह कितनी ही चतुर क्यों न हो, केवल अपने बेटे या नज़रबन्द पति के नाम पर वफ़ादारी की भावना नहीं जगा सकती। जब तक सामूहिक स्वार्थ की समस्या न हो तब तक ऐसा संगठन नहीं हो सकता, जैसा अवध में बेगम हज़रत महल के द्वारा किया गया था। जंगनामा में भी बेगम के संबंध में श्रद्धा व्यक्त की गई है। यह वास्तव में तत्कालीन जन-मन की श्रद्धा है।

ढौंढ़े गाँव नेपालगंज में एक नागरिक ने दुमंजिला खपरैल का मकान दिखा कर उसे चर्दा के राजा साहब की कोठी बतलाया था। उसके पास पशुशाला थी। उसे देखकर नागर के साथ वाले सज्जन ने कहा कि व्यंग्य कर रहा होगा। उसका विवरण नागर ने जिस प्रकार दिया है उससे अपने राजा के प्रति जनता की पूज्य भावना उजागर होती है। राजा भले बिगड़ जाए, मगर वह जहाँ रहेंगे महल या कोठी ही कहलाएगा....। आगे उन्होंने सामन्तों के रहन-सहन के बारे में बतलाया है कि समस्त राजे ऐसे ही मिट्टी के महलों और गढ़ियों में रहते थे। उनके पास धन की शक्ति गड़न्त होती थी। उसके द्वारा जन की शक्ति उजागर होती थी। रहन-सहन में वैभव का प्रदर्शन नहीं होता था। घने जंगलों में मिट्टी की गढ़ी और उसके अंदर मिट्टी के महल-दुमहले होते थे।

दुविधापुर में राजा जगजोतसिंह के पुत्र शिवराज सिंह से बाराबंकी के कांफ्रेंस के बारे में पता चला था। उससे नागर ने यह निष्कर्ष निकाला कि बलरामपुर रियासत वाले अपने बाल-बच्चों की सुरक्षा क लिए आपस में तय करके कोई एक अंग्रेजों का साथ देते थे। इस तरह ऐसा लगता है कि उनमें राष्ट्रभक्ति की कमी न थी लेकिन वे अपने बच्चों के लिए समझौता करते थे।

मितौली के राज लोनेसिंह के दोहरे चरित्र का विश्लेषण करते हुए नागर ने लिखा है कि राजा लोनेसिंह कायर था। वह लाभ में रहना चाहता था और निश्चय नहीं कर पा रहा था कि जीत किसकी होगी। इसीलिए उसने अंग्रेजों को शरण दी लेकिन घबराहट के कारण बुरा बर्ताव किया। लोनेसिंह ने अपना स्वभाव बना लिया था कि वह देशी सेनाओं की चढ़ती के समय अंग्रेजों पर धौंस जमा कर उन्हें तुच्छ बतलाता। फिर जब अंग्रेजों के अच्छे दिन आते तो उनकी खुशामद करता। लोनेसिंह पड़ोसी राजाओं की रियासत कब्ज़े में कर अपना साम्राज्य विस्तार करता था। इसीलिए पड़ोसियों के साथ उसके अच्छे संबंध नहीं थे। उसके साढू जगन्नाथ सिंह ने अंग्रेजों के समक्ष लोनेसिंह से आत्मसमर्पण करवाया था। इस तरह यह पता चलता है कि लोनेसिंह के साढू से भी अच्छे संबंध नहीं थे। यह वही पुवायाँ का राजा जगनाथ सिंह है जिसने सत्तावनी क्रांति के वीर मौलवी अहमदुल्ला शाह को धोखे से मरवा दिया था।

अमृतलाल नागर ने सीतापुर जिले के अम्बरपुर से कुछ दूरी पर अटरिया गाँव में प्रयागदत्त शुक्ल से मुलाकात की थी। बातचीत के क्रम में नागर किंवदन्तियों के बारे में बतलाते हैं कि उसमें सत्य-असत्य का अनोखा मेल हो जाता है। राजा मानसिंह ने बेगम का साथ छोड़ा बहुत तो जरूर दिया होगा,ऐसा नागर ने निष्कर्ष निकाला। नागर ने किंवदन्तियों और लिखित साक्ष्य की तुलना कर यह माना कि मनवा के कोट पर मौलवी साहब द्वारा तोप चढ़ा ले जाना, अंग्रेज़ी फौज का मार्ग आदि बातें ठीक है।

नैमिषारण्य में नागर ने नाना राव पेशवा के बारे में सुना कि वे वहाँ कैलासन के बाबा के रूप में कई दिनों तक रहे थे। फिर किसी से उनका झगड़ा हो गया तो उठकर कैलासन चले गये थे। नागर ने इस अनुश्रुति का विश्लेषण किया है कि कानपुर के इतने निकट मीरा की सराय में या नैमिषारण्य में इतने ठाठ-बाट से रहने

की गलती नाना धोडूपन्त पेशवा जैसा बुद्धिमान करे फिर झगड़ा कर महज़ चार-पाँच मील दूर कैलासन में जाकर रहने लगे– यह अविश्वसनीय लगता है। नागर को यह भी पता चला कि नाना पेशवा ने विश्वनाथ के टीले पर स्थित मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर वहाँ निवास किया था। लेकिन नागर को यह सूचना सही नहीं लगती है। नागर ने विश्लेषण करते हुए लिखा है कि न अंग्रेज सरकार का खुफिया पुलिस विभाग ही इतना लापरवाह था और न नाना साहब ही। नाना ऐसी जगह नहीं रह सकते जहाँ अंग्रेज आराम से पहुँच सकते थे। और ऐसी आसान जगह का पता अंग्रेज सरकार का खुफिया विभाग न लगा सके–यह असंभव सा लगता है। नागर ने चक्रतीर्थ में ललिता देवी के मंदिर में मथुरा माली से भेंट की थी। वहाँ भी उन्हें नाना राव पेशवा के कैलासन के बाबा के रूप में रहने, फिर कैलासन जाने का पता चला था। लेकिन नागर इस बात पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ये व्यक्ति और चाहे जो हों, नाना राव पेशवा नहीं थे। बड़े नेताओं को जनता इतना प्यार करती है कि उनकी मृत्यु का ख्याल भी नहीं सहन कर पाती है। नेताजी सुभाषचंद्र बोस असंख्य भारतीय जनों के विश्वासानुसार 1957 ई. में भी जीवित थे। हाल में ही समाचार पत्रों में उनकी मृत्यु की संभावना व्यक्त की गई थी।

कनपुरिया क्षत्रिय वंश के ठाकुर रामगुलाम सिंह ने क्रांतिकारियों का भी साथ दिया था लेकिन अंत में अंग्रेजों के साथ अपनी नेकनीयती दिखलायी। ठाकुर रामगुलाम सिंह के लिए कई अंग्रेजों ने सिफ़ारिशी पत्र लिखे थे। नागर ने इन सब बातों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला कि सत्तावनी क्रांति के असफल होने के बाद अनेक 'स्वाभिमानी' क्षत्रिय, ब्राह्मण और उच्च वर्गीय ताल्लुकेदार अंग्रेजों के प्रति ख़ैरख़वाही दिखलाते हुए उनके तलवे चाटते थे। नागर ने आगे यह जोड़ा कि अंगेजों की खुशामद करने में न जाने इन क्षत्रियों का क्षात्र धर्म और स्वाभिमान कहाँ चला जाता था। नागर ने कवि दुलारे के लोकगीत की राणा सम्बंधी पंक्तियाँ उद्धृत की है–

"भाई बन्ध औ कुटुम कबीला सबका करौं सलामा।
तुम तौ जाय मिल्यो गारेन ते हमका है भगवाना।।"[23]

नागर का विचार है कि साथियों को अंग्रेजों के मददगार बनते देखते हुए उन क्रांतिकारियों को कितनी तकलीफ़ होती होगी जो नेपाल के जंगलों में भटक रहे थे। यह दर्द शायद उन्हें अपना राज-पाट खाने से भी बड़ा लगता होगा।

कनपुरिया जाति की उत्पत्ति के संबंध में एक किंवदन्ती है कि सूक्ष्म मुनि ने गहरवारा राजा मानिकचन्द्र की पुत्री को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। वह पुत्री कुँवारी थी, और मुनि की सेवा में लगी थी। उसे कुँवारी होने के कारण इस आशीर्वाद से कलंकित होने का डर लगा इस पर मुनि ने कहा कि पुत्र उसके कान से उत्पन्न होगा। इस प्रकार कान से उत्पन्न होने वाले पुत्र से कनपुरिया क्षत्रियों का वंश चला। इस अनहोनी-सी किंवदन्ती से नागर ने यह निष्कर्ष निकाला कि अविवाहिता युवती से उत्पन्न पुत्र कानीन कहलाता है। इसीलिए राजा मानिकचन्द की कन्या से उत्पन्न गेगासो के इस सूक्ष्य मुनि का पुत्र कान्नीन कहला सकता है।

अमृतलाल नागर ने अपने कथ्य का मुख्य विषय ही गदर की उन्नायकों को पता लगाना रखा है। इस क्रम में उन्होंने शंकरपुर के राणा बेनीमाधव बख्श, गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह और चहलारी के राजा ठाकुर बलभद्रसिंह, बेगम हज़रत महल, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ओर तुलसीपुर की रानी राजेश्वरी देवी को बहुत महत्त्व दिया है। नागर ने बेगम की संगठन शक्ति की जगह-जगह प्रशंसा की है। हरचन्दपुर में बजरंग बली से नागर को पता चला कि बेगम ने अपने बेटे बिरजीस क़दर के नाम से सहायता माँगी थी। लेकिन नागर को लगता है कि सामन्त सामूहिक स्वार्थ के चलते बेगम के साथ थे। साथ ही राणा बेनीमाधव जैसे लोग कठवारे में बेगम के भाषण से प्रभावित होकर उनके साथ हो गये थे। इस कथन से नागर ने निष्कर्ष निकाला कि बेगम की वाणी में निःसंदेह बड़ा ओज होगा।

नागर का तो यहाँ तक मानना है कि विक्टोरिया के घोषण पत्र के उत्तर में बेगम हज़रत महल के ऐतिहासिक ऐलान का मजूमन स्वयं उनका ही लिखा हुआ था। सचमुच बेगम की संगठन क्षमता ऊँचे दर्जे की थी। लेकिन इसके साथ नागर ने यह भी लिखा है कि भारतीय सेना में फूट भी थी। कोई भी ऐसा योग्य कमांडर नहीं था, जो पूरी सेना का संगठन और संचालन कर सके। अर्थात् बेगम विस्तृत फलक पर संगठन करने में समर्थ नहीं हो पा रही थी। सभी नेता अपना महत्त्व जताने में लगे रहते–चाहे वह बेगम के शहज़ोर मम्मू खाँ हो, चिनहट में विजय

दिलवाने वाले जनरल बरकत अहमद हों या मौलवी अहमदुल्ला शाह। सभी में खींच-तान लगी रहती थी। इस खीच-तान से नागर ने यह निष्कर्ष निकाला कि उस समय हमारा राष्ट्रीय मानस दूसरी परिस्थिति में था। उसमें संगठन की भावना के साथ आपसी फूट और शंका भी थी। स्वाभिमान और सिद्धान्त के लिए मर-मिटने के उत्साह के साथ आपसी कलह में भी कोई कमी नहीं थी। हमारे सत्तावनी पुरखे अपनी ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रति जहाँ अत्यधिक गम्भीर थे। वहीं दूसरी ओर संगठन की व्यापकता के प्रति लापरवाह भी थे। वहीं दूसरी ओर संगठन की व्यापकता के प्रति लापरवाह भी थे। यानी काम में गति और दिशा दोनों का अभाव था। इस प्रकार हम पराजय को ख़ुद ही बुलावा दे रहे थे।

अमृतलाल नागर ने बतलाया है कि बहराइच जिले के बौंडी और रेहुआ के राजवंशों के बीच वैमनस्य था। उस वैमनस्य का विश्लेषण करते हुए नागर ने लिखा है कि सभी रैकवार आपस में लड़ भिड़ कर, रण-पूजा करते रहते थे। उनका उद्देश्य दूसरे की तुलना में खुद को श्रेष्ठ साबित करना होता था। इससे नागर ने निष्कर्ष निकाला कि ऐसी स्थिति में एक राष्ट्र की संकल्पना नहीं विकसित हो सकती है। इसके लिए तो आपस के मतभेद मिटाकर समानता का व्यवहार करना आवश्यक है। जब तक एक दूसरे प्रति समानता और मित्रता का भाव नहीं आयेगा तब तक एकता स्थापित नहीं हो सकती है। इस प्रकार नागर ने बतलाया है कि राष्ट्र की संकल्पना के लिए वैमनस्य का मिटना पहली शर्त है। इसके बाद ही हम एक भाव-भूमि पर आ सकते हैं और 'एक राष्ट्र की संकल्पना पूरी हो सकती है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि 1857 की क्रांति की यह बहुत बड़ी कमी थी। सभी अपने-अपने सीमित क्षेत्रों की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे। उनमें पूरे देश की स्वतंत्रता के लिए संकल्पबद्ध होने जैसी कोई भावना काम नहीं कर रही थी। उनके लिए उनका क्षेत्र ही सबकुछ था उनका 'देश' था। उनकी देशभक्ति उनकी राष्ट्रीयता उनके निवास क्षेत्र तक ही सीमित थी। उस क्षेत्र के लिए वे अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहते थे। क्षेत्र विशेष की जनता अपने शासक के कहने पर मरने-मारने के लिए हमेशा तैयार रहती थी।

अमृतलाल नागर ने जहाँगीराबाद के कोट के राजा रज़्ज़ाक बख्श के बारे में सर होपग्राण्ट के 'सिपॉय वार' का उल्लेख किया है। उसमें लिखा है कि रज़्ज़ाक

बख्श दोतरफा चाल चलता रहा। नागर ने रज़्ज़ाक बख्श का विश्लेषण करते हुए उसे देशद्रोही मानने से इनकार किया है। उनका मानना है कि जिस प्रकार राजा ने तोपें छिपा कर अंग्रेजों को मारने की व्यवस्था कर रखी थी और जिसके पास अंग्रेजों के खिलाफ कागज़ात भी थे, वह अंग्रेजों का वफ़ादार नहीं हो सकता है। फिर अंग्रेजों ने रज़्ज़ाक बख्श को जिस प्रकार की भयंकर सजा दी थी, उससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है। राजा को अस्सी अन्य व्यक्तियों के साथ फाँसी देकर उसकी लाश जलते हुए जंगल में झोंक दी गयी थी। उसके महल की स्त्रियों को बेइज़्ज़त किया गया था। अपने ख़ैरख़्वाहों के साथ अंग्रेज इतना बुरा सुलूक नहीं करते।

नागर ने राणा बेनीमाधव की वीरता के संबंध में रसेल की 'माइ डायरी इन इंडिया' का उल्लेख किया है। उसमें रसेल ने लिखा है कि चारों तरफ से घिरे होने पर भी राणा अपनी सेना, स्त्रियाँ और संपत्ति लेकर सुरक्षित भाग निकलने में सफल हुआ था। नागर रसेल के इस कथन के बाद रूक नहीं जाते हैं उन्होंने इस कथन से निष्कर्ष निकालते हुए आगे लिखा है कि रसेल की वर्णन शैली इस बात की झोतक है कि राणा की वीरता से वे प्रभावित थे। नागर ने यह भी लिखा है कि सच्चा वीर वही है 'शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें।'

इस प्रकार नागर ने ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण द्वारा 'गदर के फूल' के कथ्य को स्पष्ट कर दिया है। उनके द्वारा किए गए विश्लेषण जहाँ एक तरफ नागर की ऐतिहासिक दृष्टि से अवगत कराते हैं वहीं दूसरी तरफ पाठक की समझ विकसित करने में भी सहायक होते हैं। तथ्यों का विश्लेषण करने पर उसके नये-नये आयाम खुलते चले जाते हैं। इसके कारण कई बार नयी-नयी चीज़े प्रकाश में आती हैं। इसीलिए नागर द्वारा किये गये तथ्यों के चयन की ही तरह उनके विश्लेषण का भी अपना महत्त्व है।

(iiii) कथ्य के प्रस्तुतीकरण में इतिहास सहायक या बाधक

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में इतिहास का प्रयोग किया है। उन्होंने 'गदर के फूल' के आरम्भ में लिखा है–"सत्तावनी क्रांति के संबंध में भारतीय

दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास के अभाव में जनश्रुतियों के सहारे ही इतिहास की गैल पहचानी जा सकती है।"[24]

इस कथन से यह साफ पता चलता है कि नागर ने इतिहास की लिखित परम्परा के साथ वाचिक परम्परा को भी महत्त्व दिया है।

यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि 'गदर के फूल' के प्रस्तुतीकरण में इतिहास सहायक है या बाधक? इसके लिए आवश्यक है कि हमारे विचार बिन्दु के केन्द्र में 'गदर के फूल' का कथ्य बना रहे। नागर ने इस पुस्तक में विचार किया है कि 1857 की क्रांति में अवध किस रूप में आया है? उसके प्रमुख क्षेत्रों की गदर में क्या भूमिका रही है? क्रांतिकारियों ने उसमें केवल अपने स्वार्थ के लिए भाग लिया या उनका कोई राष्ट्रीय लक्ष्य भी था? साथ ही क्रांति में भाग लेने वालों में ज्यादा देशभक्ति काम कर रही थी या राजभक्ति?

नागर ने किसी भी ऐतिहासिक तथ्य की बात की है तो उसके स्पष्टीकरण के लिए विविध स्रोतों का सहारा लिया है। विविध स्रोतों से जाँच-पड़ताल करने के बाद ही नागर ने किसी तथ्य के प्रामाणिक होने पर मुहर लगायी है। नागर ने बाराबंकी पहुँचने पर वहाँ के स्थानीय अधिकारियों ने यह शंका जतायी कि चहलारी नरेश बलभद्रसिंह वास्तव में देशभक्त थे भी या नहीं? कुछ लोगों का ख्याल था कि अंग्रेजों ने नवाबगंज में उनकी कब्र बनवाई है। इसीलिए वे गदर के नायक नहीं हो सकते हैं। लेकिन वहीं नागर की मुलाकात अहमद किदवई उर्फ अच्छन साहब से हुई। उन्होंने अपने मामा से चहलारी के राजा के बारे में कई किस्से सुन रखे थे। इसीलिए नागर ने दोनों विपरीत बातों में से बलभद्रसिंह को अंग्रेज परस्त मानना उचित नहीं समझा। नागर ने उस विषय पर भावनात्मक पक्षधरता का परिचय नहीं दिया बल्कि और अधिक प्रमाणों की खोज शुरू कर दी। उन्होंने सर होपग्राण्ट की पुस्तक 'सिपॉय वार' में नवाबगंज युद्ध में भारतीय सैनिकों के शौर्य का वर्णन पढ़ा था। होपग्राण्ट का यह भी कहना था कि नवाबगंज जैसा अभूतपूर्व युद्ध उन्हें पहले कभी नहीं लड़ना पड़ा। और उनमें एक तो एक था। कहाँ 'एक' का संकेत निश्चित रूप से बलभद्रसिंह की तरफ है। 'लन्दन टाइम्स' के रिपोर्टर और उक्त युद्ध के एक शत्रुपक्षीय सेनानी विलियम रसेल ने उस अनोखे 'एक' का नाम भी लिखा है – बलभद्र चहलारी।

दुविधापुर में एक अध्यापक तुलसीराम ने नागर को बलभद्रसिंह से संबंधित कवित्त सुनाया। इसी तरह नागर को बलभद्रसिंह से संबंधित और भी आल्हा-कवित सुनने को मिले। इस प्रकार इतिहास की सही समझ और अध्ययन के सहारे नागर ने दो विपरीत तथ्यों में से उस तथ्य का चयन किया, जो उन्हें अधिक प्रामाणिक लगा। इसके बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि बलभद्रसिंह क्रांतिकारी (स्वतंत्रता सेनानी) थे और अंग्रेज़ों से उनकी कोई मित्रता नहीं थी।

जब ऐतिहासिक साक्ष्यों या इतिहास की बात की जाती है तो स्वतः ही तथ्यों की बात आ जाती है। वस्तुतः तथ्य लगभग एक ही होते है जिनका इतिहासकार अपनी दृष्टि और मत के अनुसार प्रयोग करता है। नागर को भी ऐतिहासिक साक्ष्यों के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में एक ही तथ्य की अलग-अलग व्याख्याएँ मिली होंगी। जैसे– मजूमदार 1857 की क्रांति को 'स्वतंत्रता का संघर्ष' मानने को तैयार नहीं है। इसके विपरीत विपिन चंद्र का मानना है कि यह एक विद्रोह या क्रांति थी। अयोध्या सिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत का मुक्ति संग्राम में माना है कि यह पहला देशव्यापी स्वतंत्रता संग्राम था। रामविलास शर्मा 1857 की क्रांति को 'जनक्रांति' मानते हैं और उसे फ्रांस की राज्यक्रांति से जोड़ते हुए सामंतविरोधी बतलाते हैं। अमृतलाल नागर ने अपनी बात रखने के लिए पूरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखा है। साथ ही उन्होंने अपनी यात्रा से प्राप्त वाचिक परम्परा में मौजूद इतिहास के आधार पर भी तथ्यों को चयन किया है। तत्पश्चात् निष्कर्ष निकाला कि 1857 की क्रांति जनक्रांति थी लेकिन वह फ्रांस की क्रांति से भिन्न थी। 1857 की क्रांति में सिपाही, ताल्लुकेदार, किसान और स्त्रियों ने सम्मिलित रूप से भाग लिया था। कुछ इतिहासकारों ने उसे केवल सिपाही विद्रोह मानते हैं। अयोध्या सिंह ने इसके विरोध में जस्टिन मैकार्थी के कथन का उल्लेख किया है–

> "...यह किसी भी तरह सिर्फ सिपाही विद्रोह नहीं था। यह भारत पर अधिकार करने वाले अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय घृणा, धार्मिक उग्रता और सिपाहियों की शिकायत का संयुक्त रूप था।"[25]

अमृतलाल नागर ने किंवदन्तियों और लोक-साहित्य से प्रमाण ढूँढ़ने का सर्वाधिक प्रयास किया है। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अगर नागर किंवदन्तियों पर अंधविश्वास कर लेते तो शायद अपने कथ्य के साथ न्याय नहीं कर पाते। इसीलिए

यह नागर की खूबी रही कि उन्होंने वाचिक परम्परा के इतिहास को भी अपने उद्देश्य के अनुसार प्रयोग किया। जैसे –बाराबंकी जिले के दरियाबाद के मार्ग में रामस्नेही घाट पड़ता है। नागर ने बाबा रामस्नेही के मकान जाकर उनके वंशजों से मुलाकात की। उनके घर वालों ने रामस्नेही के गदर में या कभी किसी भी सेना से लड़ने की बात को अस्वीकार किया। इस बात का शक नागर को बाबा रामस्नेही की समाधि देख कर हुआ था। समाधि ऊँचे चबूतरे पर उल्टी नाँद के स्तूप की आकृति की बनी थी। आमतौर पर ऐसी समाधि तब होती है जब महात्मा जीवित समाधि लेते हैं। इस प्रकार एक अच्छे खोजी की तरह नागर ने बाबा रामस्नेही के बारे में ग़लतफ़हमी साफ की।

गज़ेटियर में क्या लिखा है अमृतलाल नागर इसकी जानकारी रखते थे। उन्होंने जिस भी जिले में गदर की स्थिति के बारे में बतलाया है, उससे संबंधित जानकारियाँ गज़ेटियर से भी प्राप्त की है। जैसे–उन्होंने सुल्तानपुर में गदर प्रारंभ होने की तिथि 9 जून बतलायी है। वहीं तिथि गज़ेटियर में भी दी गयी है। उसी तरह कर्नल फ़िशर को मिलिटरी लाइन से लौटते समय मारने की घटना भी गज़ेटियर की तरह ही नागर ने बतलायी है। मौका मिलते ही अंग्रेजों ने सुल्तानपुर को पूरा तबाह कर डाला। नागर ने सुन रखा था कि पुराने सुल्तानपुर के खंडहर गोमती पर आज भी उस नाश की गवाही देने के लिए खड़े हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी से नागर को अपनी मान्यताओं की पुष्टि और उसके विश्लेषण में सुविधा हुई है।

बौंडी के महाराज हरदत्तसिंह के बारे में नागर ने अवध गज़ेटियर में पढ़ा था कि पोर्ट ब्लेयर में मरे थे। रेहुआ के कुँवर इन्द्रप्रताप नारायण सिंह ने इस बात से इनकार किया था। उनका कहना कि अंग्रेजों ने हरदत्तसिंह की ग़ैरमौजूदगी में ही उन्हें सजा दी लेकिन जब वे वहाँ मौजूद ही नहीं थे तो उन्हें काला पानी भेजा ही कैसे जा सकता था? हाँ, रियासत जरूर ज़ब्त कर ली गयी थी। इस प्रकार नागर को कभी-कभी अपनी ज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों से अलग जानकारी वाचिक परम्परा में मिली थी।

अमृतलाल नागर ने नाना राव पेशवा के बारे में कैलासन के बाबा के रूप में कई किस्से सुने थे। उन्होंने सर जॉन के, बसु, सुन्दरलाल और सावरकर लिखित

इतिहास में नाना राव पेशवा के शौर्य का वर्णन पढ़ा था। इससे उन्हें विश्वास हो गया था कि कैलासन के बाबा के रूप में जो व्यक्ति प्रसिद्ध है, वह नाना राव पेशवा नहीं हो सकते। इस प्रकार उन्होंने प्रसिद्ध किंवदन्ती से अलग सच्चाई का पता लगाया है।

नागर ने 'दैनिक स्वतंत्र भारत' में हरचन्दपुर के यदुनाथ सिंह के बारे में पढ़ा था। परन्तु हरचन्दपुर में नागर को ठाकुर जयदेवसिंह से पता चला कि हरचन्दपुर में कोई रियासत नहीं थी। यदुनाथ सिंह का नाम भी किसी ने नहीं सुना था। नागर ने लिखा है कि प्राप्त सूचनाओं में अब तक केवल यही सूचना निराधार साबित हुई। यह बात दूसरी है कि प्रापत सूचनाओं में से कुछ लोग जिन्हें नागर ने क्रांतिकारी माना था, वे मध्यम श्रेणी के चरित्र साबित हुए। यहाँ भी नागर ने विविध स्रोतों से सच्चाई का पता लगाने का प्रयास किया है। इसीलिए ऐतिहासिक स्रोत नागर द्वारा कथ्य के प्रस्तुतीकरण में सहायक रहे हैं।

राजा रज़्ज़ाक बख्श (जहाँगीराबाद) के बारे में यह तय कर पाना मुश्किल हो रहा था कि उन्हें देशभक्त माना जाए या गद्दार? सर होपग्राण्ट की किताब 'सिपॉय वॉर' में राजा रज़्ज़ाक बख्श को दोतरफा चाल चलने वाला बतलाया गया है। 'दि गोल्डन बुक ऑफ इण्डिया' के अनुसार वाज़िदअलीशाह के कारण राजा रज़्ज़ाक बख्श के अयोग्य दामाद फ़रजन्द अली को गद्दी मिल गयी थी। ऐसी स्थिति में वह शाह के प्रति वफ़ादार नहीं हो सकता था। लेकिन सिपॉय वॉर के विवरण से लगता है कि उन्होंने अंग्रेज़ों को मारने की योजना बनायी थी क्योंकि कई छुपी हुई तोपें अंग्रेजों ने खोज निकाले थे। नागर ने दोनों विवरणों के बाद महाभारत का उल्लेख कर बतलाया है कि शत्रु पक्ष के प्रबल मेधावी सेनानियों को छल, कल, बल से मारकर स्वपक्ष को संकट से उबारने की रीति भारत की रही है। अंततः नागर ने निष्कर्ष निकाला कि राजा रज़्ज़ाक बख्श निःसन्देह क्रांति के संगठन सूत्र में बँधे थे। इस विवरण से इस बात को समझा जा सकता है कि अपने कथ्य के प्रस्तुतीकरण में नागर ने किस खूबी से इतिहास का प्रयोग किया है। राजा रज़्ज़ाक बख्श की देशभक्ति के बारे में नागर एकमत नहीं हो पा रहे थे। फिर उन्होंने ऐतिहासिक साक्ष्यों का विश्लेषण कर अपना मत निश्चित किया।

अपनी यात्रा के दौरान नागर को ननकऊसिंह का 'जंगनामा' मिला। इस जंगनामा को नागर ने ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। उस जंगनामा में नागर ने पढ़ा कि किस प्रकार बलभद्रसिंह अपनी वीरता के कारण जन-जन के मन में अपना स्थान सुनिश्चित किए हुए हैं। जंगनामा से नागर को बेगम और बलभद्रसिंह के माता-पुत्र के माने हुए संबंध का पता चला था। जंगनामे से नागर को बेगम के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ मिलीं। उन्हें पता चला की जनता बेगम के प्रति बहुत श्रद्धा रखती है। जंगनामें से नागर की कोई पूर्व मान्यता नहीं टूटी। इसीलिए अपनी स्थापनाओं के साथ आगे बढ़ने में नागर को जंगनामे से पूरा सहयोग मिला। जंगनामें की सूचनाओं से नागर को इस बात की पुष्टि में सहायता मिली कि भले उस समय भारत सामाजिक और नैतिक रूप से पतनोन्मुख था, फिर भी 1857 की क्रांति ने हमारी जड़ों में मौजूद विशेषताओं को उजागर किया। जंगनामे की वृहत्त सूची में विभिन्न जातियों के शूरवीरों को नाम दर्ज़ हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि हमारा समाज संकटकाल में जाति-भेद और ऊँच-नीच भुलाकर एक हो सकता है। इस प्रकार जंगनामे से 1857 की क्रांति में हिन्दू-मुस्लिम की अटूट एकता का परिचय मिलता है।

1857 की क्रांति के स्वरूप पर विचार करने पर कई तरह की बातें प्रकाश में आती है। सावरकर ने उसे धर्म से जोड़कर देखा है। अयोध्या सिंह ने जस्टिन मैकार्थी के हवाले से 1857 की क्रांति को अंग्रेजों के खिलाफ़ राष्ट्रीय घृणा, धार्मिक उग्रता और सिपाहियों की शिकायत कर संयुक्त रूप माना। नागर ने उस विद्रोह के राष्ट्रीय रूप को देखा। इरफ़ान हबीब ने भी क्रांति का स्वरूप राष्ट्रीय माना। इरफ़ान हबीब का मानना है कि सभी इस बात में एकमत थे कि उनका शत्रु ब्रिटिश निज़ाम हैं उन्होंने अपने लेख 'राष्ट्रीय विद्रोह की कहानी' में लिखा है–

> "औपनिवेशिक शोषण इतना भीषण था कि अनेक वर्ग, जो शायद यह भी नहीं पहचानते थे कि उनकी बदहाली का कारण क्या है, फिर भी विद्रोह के रास्ते चल पड़े थे। उन्होंने बस इतना समझ लिया था कि उनकी राहत का एक ही रास्ता है, ब्रिटिश शासन का पलटा जाना। इसलिए गाँवों में हो या शहरों में, वे विद्रोह में शामिल हो गये।"[26]

नागर के मत भी अयोध्या सिंह और इरफ़ान हबीब से मेल खाते हैं। इसी तरह नागरने हिन्दू-मुसलमान एकता की भी बात की। उनका भी मानना है कि सभी इस

बात पर एकमत थे कि उनकी स्थिति तभी सुधर सकती है जब भारत में ब्रिटिश सत्ता समाप्त हो जाये।

नागर ने 1857 की क्रांति में छापेमार युद्ध के प्रयोग के बारे में लिखा है। उन्होंने उसे अपने देश की पुरानी युद्ध पद्धति बतलाया है। उदाहरणार्थ, नागर ने शिवाजी और राणा भीमसिंह की युद्ध पद्धति का उल्लेख किया है। उस पद्धति की एक विशेषता यह थी कि सेना की संख्या कम होने पर भी शत्रु पक्ष को त्रस्त किया जा सकता था। इसीलिए नागर ने लिखा है कि हमारी सेनाओं में जब संख्या खूब होती थी तो हम सम्मुख युद्ध करते थे, कम संख्या होने पर छापेमारी काम आती थी।

यह सही है कि कभी-कभी किंवदन्तियों से नागर को उनके अध्ययन से प्राप्त जानकारी से विपरीत सूचना प्राप्त हुई। लेकिन नागर ने दोनों का विश्लेषण कर सामंजस्य बैठाते हुए एक निश्चित तथ्य तक पहुँचने का रास्ता निकाला। नागर ने लिखा भी है कि वे 1857 की क्रांति के असली नायकों का पता लगाना चाहते हैं। झूठी व्यक्ति पूजा उन्हें पसंद नहीं है। साथ ही जो नायक गुमनाम हैं, उन्हें प्रकाश में लाया जानाा आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए नागर ने महसूस किया कि किसी एक स्रोत को ध्यान में रखा है। इससे स्पष्ट है कि नागर का मानना था कि ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता के लिए इतिहास के भिन्न-भिन्न साधनों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। किसी एक साधन पर निर्भरता रहने से तथ्यों की प्रामाणिकता बाधित रहने की आशंका बनी रहती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'गदर के फूल' के कथ्य के प्रस्तुतीकरण में इतिहास सहायक रहा है, बाधक नहीं। इतिहास बाधक तो तब होता जब नागर उसकी एक व्याख्या पर विश्वास करते। ऐसी स्थिति में वे अपने कथ्य से भटक जाते। लेकिन उन्होंने सदैव अपनी ऐतिहासिक समझ और शोध प्रवृत्ति का परिचय देते हुए तथ्यों की व्याख्या को जाना जरूर है लेकिन आधार रूप में तथ्यों पर ही ध्यान दिया है। ऐतिहासिक पुस्तकों को अध्ययन द्वारा उन्होंने अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और समझ को मजबूत किया है। इस प्रकार ऐसी पृष्ठभूमि उन्हें तथ्यों की अपनी समझ के अनुसार व्याख्या करने में समर्थ बनाती है। साथ की उसी पृष्ठभूमि के कारण उन्होंने हवाई बातें नहीं की है। उन्होंने अपनी हर एक बात

के पीछे एक युक्तिसंगत तर्क दिया है। उन्होंने विविध ऐतिहासिक पुस्तकों में तथ्यों का किस प्रकार उल्लेख किया गया है, उस पर भी चर्चा की है। नागर ने 'गदर के फूल' में गज़ेटियर से भी तथ्य ग्रहण किये हैं इस प्रकार उन्होंने 'गदर के फूल' में यह पूरी तरह दिखला दिया है कि किस प्रकार के अपनी रचना के लिए एक पूरा शोध कर डालते हैं। निष्कर्षतः 'गदर के फूल' के कथ्य के प्रस्तुतीकरण में इतिहास सहायक रहा है।

संदर्भ

[1] नित्यानंद तिवारी; '1857 और साहित्यः 'समाज की कलंक कथा' या 'इतिहास की अनुभूति'; अनभैसाँचा (सं. द्वारिका प्रसाद चारुमित्र, अतिथि सं. मुरली मनोहर प्र. सिंह) जुलाई-दिसम्बर 2007 में प्रकाशित, पृ. 195

[2] डी.एन. त्रिपाठी, '1857 का इतिहास विमर्श', 'अनभैसाँचा' (सं. द्वारिका प्रसाद चारुमित्र, अतिथि सं. मुरली मनोहर प्र. सिंह) जुलाई-दिसम्बर 2007 में प्रकाशित, पृ.49

[3] चंचल चौहान; '1857 की समरगाथा', 'अनभैसाँचा' (सं. द्वारिका प्र. सक्सेना, अतिथि सं. मुरली मनोहर प्र. सिंह) जुलाई-दिसम्बर 2007 में प्रकाशित, पृ.256

[4] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल', पृ.142

[5] वही, पृ.201

[6] वही, पृ.211

[7] वही, पृ.210

[8] विपिन चंद्र, 'आधुनिक भारत' (रा.शै.अनु.प्र.व.), पृ.114

[9] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल', पृ.32

[10] वही, पृ.40

[11] वही, पृ.41

[12] वही, पृ.42

[13] R.C. Majumdar; 'The character of the outbreak of 1857' (From 'The 1857 Rebellion- Editor - Biswamoy Pati), p.38

[14] रजनीकांत वर्मा, '1857 के विस्मृत योद्धा' पृ.91

[15] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल', पृ.95

[16] विपिन चंद्र, 'आधुनिक भारत' (रा.शै.अनु.प्र.प.), पृ.118

[17] अमृतलाल नागर, 'गदर के फूल', पृ.172

[18] वही, पृ.60

[19] वही, पृ.61

[20] वही, पृ.208

[21] वही, पृ.203

[22] वही, पृ.213

[23] वही, पृ.155

[24] वही, पृ.3

[25] अयोध्या सिंह, 'भारत का मुक्ति संग्राम' पृ.295

[26] इरफ़ान हबीब, लेखः 'राष्ट्रीय विद्रोह की कहानी', 'नया पथ' (सं. कमला प्रसाद, अतिथि सं. अरूण कुमार) जुलाई-दिसम्बर 2008 में प्रकाशित, पृ.29

उपसंहार

भारतीय दृष्टिकोण से लिखे इतिहास के अभाव के कारण अमृतलाल नागर ने हमारी लोकसंस्कृति में 1857 की क्रांति के तत्त्वों को ढूँढ़ने की कोशिश की है। नागर ने अपनी यात्रा के प्रथम चरण में ही महसूस किया था कि सन् सत्तावन से संबंधित सौ वर्ष पुरानी बातें एकदम से लुप्त नहीं हुई हैं। उन्हें इस बात को जानकर बहुत खुशी हुई कि बाराबंकी जिले के बलभद्रसिंह को लोगों ने आल्हों के माध्यम से जीवित रखा है।

1857 की क्रांति के स्वरूप के बारे में इतिहासकारों और विद्वानों की अलग-अलग राय रही है। 12 अगस्त 2007 के जनसत्ता में प्रभाष जोशी ने अपने लेख 'आजादी की दो गज़ ज़मीन' में वर्तमान प्रधानमंत्री और अर्थशास्त्री मनमोहन सिंह के मन्तव्य के बारे में लिखा है। मनमोहन सिंह ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अपने भाषण द्वारा यह संकेत दिया था कि अंग्रेज़ी साम्राज्य के आधुनिक और प्रगतिशील प्रभाव से यह भारत बना है।

ब्रिटिश दृष्टिकोण से प्रभावित जैसे – मजूमदार, चौधरी, सेन सभी ने कहीं न कहीं से 1857 की क्रांति में भारतीयों की हार को उनके पक्ष में देखा है। उन स्वनामधन्य इतिहासकारों की ऐसी मान्यता रही है, जिससे साफ ज़ाहिर होता है कि वे भारत में अंग्रेज़ों की भूमिका को आधुनिक और प्रगतिशील मानते आये हैं। उनका तो यहाँ तक मानना है कि हमारा विकास ब्रिटिश सरकार की बदौलत हुआ है और अगर 1857 की क्रांति में हमारी जीत हो जाती तो हमारे यहाँ फिर से सामन्ती व्यवस्था लौट आती। उन इतिहासकारों का मानना है कि उस सामन्ती व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज पुनः अंधकार में खो जाता। हम भारतीय हमेशा पुराने ढर्रे पर जीते रहते। इसीलिए हमारी पराजय में हमारा हित निहित था। उनका तो यह भी मानना है भारत में होने वाले सभी समाज सुधार जैसे– सती-प्रथा की रोकथाम, विधवा-विवाह, बाल-विवाह पर रोक आदि अंग्रेजों के कारण संभव हो सकी है। अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी भाषा की शिक्षा की अनिवार्यता को वे हमारा धन्य भाग्य समझते हैं। उन्हें शायद इस बात का पता नहीं था कि अंग्रेजी शिक्षा ने किस तरह हमें बौद्धिक रूप से गुलाम बना दिया है। हम अपनी भाषा को निकृष्ट समझने लगे और विदेशी भाषा को जानने में अपना गौरव समझने लगे। हमें पता भी नहीं चला और हम अपने देश में गुलाम बन कर रह गये। अब हम शारीरिक रूप से स्वतंत्र हो

चुके हैं लेकिन हमारी बौद्धिक गुलामी नहीं गयी है। इसीलिए हमारी सरकार आये दिन अमरीका की चापलूसी करती रहती हैं।

अमृतलाल नागर ने 'गदर के फूल' में उस ब्रिटिश मोह को तोड़ा है जिसके कारण हमारे नेता ब्रिटिश सत्ता में अपना हित देखते रहे थे। उन्होंने अवध के क्षेत्रों में घूम-घूमकर साक्ष्य इकट्ठे किए हैं। नागर ने अपनी ऐतिहासिक समझ से अवध गज़ेटियर, मजूमदार, सेन, जोशी, देवीदत्त शुक्ल, रसेल आदि के विचारों का 'गदर के फूल' में प्रयोग किया है। वह ऐतिहासिक समझ उनकी पूरी पुस्तक में पृष्ठभूमि की तरह काम करती है। इस पुस्तक के लेखन में नागर का पहला उद्देश्य 1857 की क्रांति को भारतीय दृष्टिकोण से देखना है। साथ ही उनका यह प्रयास रहा कि उस क्रांति से वे ऐसे प्रेरणादायी तत्त्व खोज निकालें जिससे भारतीय शिक्षा ग्रहण कर सकें। इस प्रकार नागर ने असफल क्रांति में सफलता के मर्म को ख़ोजने का प्रयास किया है।

मैंने अपने इस लघु शोध प्रबंध में यही देखने का प्रयास किया है कि नागर ने एक ऐतिहासिक घटना को चुन कर उसके किन आयामों को देखा है। इस लघुशोध प्रबंध को मैंने तीन अध्यायों में बाँटा है। पहले अध्याय में मैंने अमृतलाल नागर की जीवनी और उनकी रचनाधर्मिता पर बात की है। मेरे शोध-प्रबंध के शीर्षक को देखकर संभवतः कुछ लोगों को प्रथम अध्याय पर आपत्ति हो लेकिन रचना पर बात करने से पूर्व रचनाकार पर बात करना आवश्यक है। इस स्थिति को ई.एच. कार. की मान्यता से मिला कर अच्छी तरह समझा जा सकता है। ई.एच.कार. का मानना है कि ऐतिहासिक तथ्य शुद्ध रूप में हमारे सामने नहीं आते हैं बल्कि इतिहासकार के रंग में रंग कर आते हैं। उन पर इतिहासकार के दृष्टिकोण का प्रभाव रहता है। इसीलिए पहले अध्याय में नागर के इन दो पक्षों पर विचार करने के क्रम में मैंने पहले उप-अध्याय में उनके संक्षिप्त जीवन-परिचय पर विचार किया है। उससे यह समझने में सहायता मिली है कि नागर के जीवन में लेखक बनने में सहायक कौन-कौन-सी परिस्थितियाँ रही हैं। दूसरे उप-अध्याय में मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि नागर के रचनाकार व्यक्तित्व की निर्मिति में उनके पारिवारिक परिस्थितियों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। घर में आने वाली पत्र-पत्रिकाओं और पिता के साहित्यकार मित्रों के सान्निध्य ने उनके रचनाकार व्यक्तित्व की नींव रखी

थी। साथ ही नागर ने सामाजिक सरोकार और आस-पास की घटनाओं और लोगों के हाव-भाव निरीक्षण करने की आदत ने उनकी रचनाओं की विषय-वस्तु तैयार करने और पत्रों के गढ़न में सहायता की। आगे चलकर नागर ने अपने समय के साहित्यकारों से मिलने का नियम बना लिया था। इससे उनकी साहित्यिक समझ में विकास हुआ। नागर की हर विषय पर लंबा शोध करने की प्रवृत्ति और उनकी साहित्यिक मित्र मंडली ने उनके रचनाकार व्यक्तित्व को नये आयाम प्रदान किये। तीसरे उप-अध्याय में मैंने नागर का रचना-संसार दिया है।

दूसरे अध्याय में मैंने 'गदर के फूल' के कथ्य पर विचार किया है। इसके पहले उप-अध्याय के अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अवध की क्रांति में शामिल होने का प्रमुख कारण उसके क्षेत्रों का ब्रिटिश सरकार द्वारा अधिग्रहण और राजस्व वसूली के लिए महालबाड़ी व्यवस्था का लगाया जाना था। इसके दूसरे उप-अध्याय में मैंने अवध के प्रमुख क्षेत्रों की क्रांति में भूमिका का पता लगाया है। इस उप-अध्याय के अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अवध के सभी क्षेत्रों में क्रांति एक ही तरह नहीं फैली थी बल्कि उसका परिमाण अलग-अलग था। वैसे भी यह मान्य तथ्य है कि क्रांति में हर क्षेत्र समान रूप से शामिल नहीं हो सकता है। किसी-किसी क्षेत्र में तो नागर ने गदर की सुगबुगाहट तक भी महसूस नहीं की थी। कहीं-कहीं के निवासियों ने गदर में अपने यहाँ के लोगों के शामिल होने से पूरी तरह इनकार किया है। ऐसी स्थिति में भी नागर निराश नहीं हुए क्योंकि उन्हें पता था कि कहीं क्रांति की ज्वाला नहीं धधकी हो तो उसमें निराश होने जैसा कुछ नहीं है। नागर की आशान्वित रहने की प्रवृत्ति को मैंने उनके व्यक्तित्व से जोड़कर देखा है। नागर ने किसी भी परिस्थिति में निराश होना नहीं सीखा था। प्रारंभ में जब उनकी रचनाएँ नहीं छपती थीं और बिना किसी आलोचना के उपेक्षित रह जाती थीं तब भी वे निराश नहीं होते थे। उन्होंने निरंतर अपनी रचनाएँ प्रकाशनार्थ भेजीं। उनके आत्मविश्वास के कारण बाद में उनकी रचनाएँ छपने भी लगीं।

'गदर के फूल' के कथ्य पर विचार करते समय शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इस पुस्तक के केन्द्र में 1857 की क्रांति है। हाँ, ग़ौर करने वाली एक बात है तो 'फूल', जिस पर मैंने विचार किया है। इस संबंध में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि नागर ने 1857 की क्रांति के सबल पक्षों को ढूँढ़ने का प्रयास किया है। उसे ही

उन्होंने 1857 की क्रांति का 'फूल' या 'सार-तत्त्व' माना है। 1857 की क्रांति को नागर ने 'क्रांति' माना है लेकिन 'गदर' शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा प्रयोग उन्होंने 'गदर' शब्द की व्यापकता के कारण किया है। इस अध्याय के तीसरे और चौथे उप-अध्याय में मैंने क्रांति के उन्नायकों और उनकी भावना पर बात की है। तीसरे उप-अध्याय के अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि यद्यपि क्रांतिकारियों का निजी स्वार्थ था तथापि उन्होंने राष्ट्रीय लक्ष्य को ध्यान में रखकर बहुत-से काम किए थे। चौथे उप-अध्याय के अंत में मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि जनता में अधिकतर देशभक्ति की भावना थी भले उसका दायरा सीमित था। उनमें 'राष्ट्र की संकल्पना' का अभाव था। अपवाद हर जगह होता है–मैंने देखा कि जो सिपाही अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा निभा रहे थे उनमें देशभक्ति भले न हो लेकिन उनकी वफ़ादारी से इनकार नहीं किया जा सकता है। जैसे सूबेदार सीताराम जिसकी कहानी का पता लगाकर मधुकर उपाध्याय ने 'रामकहानी सीताराम' लिखा है। हाँ, बड़े सामन्तों में देशभक्ति की तुलना में राजभक्ति अधिक थी, पर छोटे सामंत अपने देश के प्रति निष्ठा रखते थे।

अमृतलाल नागर की यह कृति यूँ तो साहित्यिक है, लेकिन ऐतिहासिक विषय और तथ्यों के प्रयोग के कारण उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसीलिए तीसरे अध्याय में मैंने 'गदर के फूल' में इतिहास के प्रयोग पर विचार किया है। इस अध्याय में मैंने तीन उप-अध्याय रखे हैं। पहले उप-अध्याय में 'गदर के फूल' में इतिहास के प्रयोग पर विचार करते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि नागर ने अवध गज़ेटियर और इतिहासकारों जैसे– मजूमदार, सेन, जोशी, सुन्दरलाल, देवीदत्त शुक्ल आदि की मान्यताओं जैसे लिखित साक्ष्यों का प्रयोग किया है तो वहीं मौखिक परम्परा में मौजूद साक्ष्यों का भी प्रयोग किया है। मैंने उक्त इतिहाकारों के साथ ही आवश्यकतानुसार विपिन चंद्र, रुद्रांग्शु मुखर्जी, अयोध्या सिंह, रजनीकांत गुप्त, इरफ़ान हबीब और मन्मथनाथ गुप्त आदि का इतिहासकारों के विचारों का भी प्रयोग किया है। दूसरे उप-अध्याय के अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि नागर ने बहुत ही कुशलता से ऐतिहासिक साक्ष्यों और घटनाओं का विश्लेषण करते हुए अपनी बातों की पुष्टि की है। तीसरे उप-अध्याय के अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि नागर ने इतिहास का प्रयोग इतने ध्यान से किया है कि वह उनके कथ्य के

प्रस्तुतीकरण में सहायक बना है। उन्हें इस बात का पता था कि तथ्य एक ही होते हैं। यह इतिहासकार पर निर्भर करता है कि वह उनमें से किसका चयन करता है। साथ ही अपने काम में वह किस तरह उन्हें प्रयोग में लाता है। इस तरह यह कहना गलत न होगा कि नागर की पूरी कृति ही सकारात्मक पक्षों की खोज है। उन्होंने जिस कुशलता से 1857 की क्रांति के सार-तत्त्वों को ढूँढ़ निकाला है, उसी कुशलता से उन्होंने ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी तथ्यों को ढूँढ़ निकाला है इससे 'गदर के फूल' का कथ्य आसानी से स्पष्ट हो सका है।

मेरे इस लघु शोध-प्रबंध में पहले अध्याय के अलावे दो और बातों पर टिप्पणी की जा सकती है। इसीलिए मैं उसके संबंध में भी अपने विचार रख देना उचित समझती हूँ। पहली बात तो यह है कि मैंने 1857 की क्रांति के उदय और असफलता के कारणों पर बहुत संक्षेप में विचार किया है। इसके उत्तर में मुझे बस इतना कहना है कि 1857 की क्रांति के संबंध में ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन पर बहुत विचार हो चुका है और लगभग एक जैसी ही बातें प्रकाश में आयी है। इसीलिए मुझे उस पर संक्षेप में विचार करना ही पर्याप्त लगा। दूसरी बात है कि मैंने दूसरे अध्याय में उप-अध्याय पर बात शुरू करने से पूर्व कुछ ज्यादा लंबी पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। उसकी तुलना में तीसरे अध्याय की पृष्ठभूमि छोटी है और पहले अध्याय में तो मैंने सीधे ही उप-अध्याय पर बात शुरू कर दी है। इसका उत्तर है कि 'गदर के फूल' को पढ़ते हुए मैंने बहुत-सी ऐसी बातों पर विचार करना आवश्यक समझा था जिसे मैं किसी उप-अध्याय के अन्तर्गत नहीं डाल सकती थी। इसीलिए उन तथ्यों का प्रयोग मैंने दूसरे अध्याय की पृष्ठभूमि में कर दिया है। तीसरे अध्याय में मैंने बस इतिहास और नागर द्वारा उसके प्रयोग के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक समझा जिस पर थोड़े में विचार किया जा सकता था। जब मैं पहले अध्याय पर बात करती हूँ तो यह कहना गलत न होगा कि उस अध्याय पर विचार करने के लिए अलग से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी, वरन् उसके उप-अध्याय ही पर्याप्त थे।

निष्कर्षतः मैं यह कहना चाहती हूँ कि इस शोध-प्रबंध को लिखते हुए मेरा प्रयास नागर द्वारा 1857 पर किये गये काम को प्रकाश में लाना है। 'गदर के फूल' पर विचार करते हुए जब मैंने विविध आयामों को देखा तब पता चला कि

असफलताओं में सफलता के बीज किस तरह तलाश किये जा सकते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि निरंतर जूझते रहने, एक-एक विषय पर लंबा शोध करने की नागर की प्रवृति पाठक में मेहनत करने की इच्छा पैदा करती है। जिस प्रकार अवध के क्षेत्रों में घूम-घूम कर नागर ने 1857 की क्रांति के तत्त्वों का पता लगाया उसी तरह अन्य क्षेत्रों से भी हमें क्रांति से संबंधित बहुत सी जानकारियाँ मिल सकतीं हैं। इस दिशा में प्रयास करना सार्थक होगा और 1857 की क्रांति के संबंध में और भी नये तथ्य प्रकाश में आयेंगे।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

अमृतलाल नागर; 'गदर के फूल', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 2003

सहायक ग्रन्थ

हिन्दी पुस्तकें

1. अखिलेश मिश्र; '1857 का मुक्ति संग्राम' (संपा.–वंदना मिश्र), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
2. अमृतलाल नागर; 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 2001
3. अमृतलाल नागर; (अनु.); 'आँखों देखा गदर' (अनुवाद–विष्णुभट्ट गोड्से लिखित 'माझा-प्रवास' का), राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1986
4. अयोध्या सिंह; 'भारत का मुक्ति संग्राम' (अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के विद्रोह)', रेखा प्रकाशन, कलकत्ता, 1973
5. कर्मेन्दु शिशिर; '1857 की राज्यक्रांति (विचार और विश्लेषण)', अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि., नई दिल्ली, 2008
6. द्वारिका प्रसाद सक्सेना; 'हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास और उपन्यासकार', विश्वभारती पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004
7. बी.एल. ग्रोवर, यशपाल; 'आधुनिक भारत का इतिहास', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, 1981
8. मधुकर उपाध्याय; 'रामकहानी सीताराम', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
9. मधुकर उपाध्याय (अनु.) 'विष्णुभट्ट की आत्मकथा', (अनुवाद–विष्णुभट्ट गोड्से लिखित 'माझा-प्रवास' का), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007
10. रजनीकांत वर्मा; 'रायबरेली', '1857 के विस्मृत योद्धा', विभा प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000
11. रामविलास शर्मा; 'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद' (खंड 1, 2), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1982
12. रामविलास शर्मा; 'सन् सत्तावन की राज्य क्रांति और मार्क्सवाद' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

13. विनायक दामोदर सावरकर; '1857 का स्वातंत्र्य समर', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

14. विपिन चंद्र; 'आधुनिक भारत', राष्ट्रीय शैक्षणिक, अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

15. विपिन चंद्र, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, 2000

16. शरद नागर (संपादक); 'अमृतलाल नागर रचनावली (खण्ड 1-12)', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1991

17. श्रीलाल शुक्ल; 'अमृतलाल नागर (भारतीय साहित्य के निर्माता)', साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1998

18. सुन्दरलाल; 'भारत में अंग्रेजी राज (खण्ड 1, 2)', प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2000

अंग्रजी पुस्तकें

1. Biswamoy Pati (Editor), 'The 1857 Rebellion', Oxford University Press, New Delhi, 2007

2. P.C. Joshi (Editor), 'Rebellion 1857, A Symposium', K.P. Bangchi & Company, Calcutta, 1986

पत्र-पत्रिकाएँ

1. जनसत्ता (दैनिक); दिल्ली, कोलकाता, चंडीगढ़, लखनऊ, रायबरेली से प्रकाशित

2. हिन्दुस्तान (दैनिक), नई दिल्ली से प्रकाशित

3. अनभै साँचा, जुलाई-दिसंबर, 2007

4. आजकल, मई 1990, मई 2007

5. उद्‌भावना, अप्रैल-जून 2007

6. नया पथ, मई 2007

7. प्रगतिशील, वसुधा-76, जनवरी-मार्च 2008

8.मीडिया, अप्रैल-जून 2007

9.योजना, अगस्त 2007

10. वागर्थ, जनवरी 2001

11.सारिका, 16-31 अगस्त 1985

12. अवध गजेटियर